घृणामयी ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ६७ वाँ ग्रन्थ।

घृणामयी।

लेखक—

इलाचन्द्र जोशी।

प्रकाशक—

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, बम्बई।

आषाढ़, १९८६ वि०।

जून सन् १९२९ ई०।

प्रथमावृत्ति।] सजिल्दका १॥) [मूल्य १

घृणामयी।

प्रथम भाग।

१

घृणा! घृणा! मेरी सारी आत्मा आज घृणाके भावसे ओत-प्रोत है। मुझ हत्यारी नारीने आज समस्त प्रकृतिको, सारे विश्वको अपने अन्तस्तलकी घृणासे लीप-पोतकर एकाकार कर दिया है। इस अनंत सृष्टिका अस्तित्व ही आज मेरे लिये केवल घृणाको लेकर है। स्त्रीका रूप देखते ही घृणासे मेरा खून खौलने लगता है; पुरुषकी छायासे भी मेरा हृदय जर्जरित हो उठता है। दिनके कोलाहलसे मैं बेतरह ऊब उठती हूँ; रात्रिकी विजन शान्तिसे मेरा दिल दहल जाता है। अनन्त सुख-दुःखमय जीवनधाराकी विचित्र लहरी-लीला देख देखकर मेरी आत्मा भड़क उठती है, और महामृत्युकी कल्पनासे भी मेरी रग-रगमें निबिड़ उदासीनतामय घृणा व्याप्त हो जाती है। हाय मेरे भगवान्! इस घृणामयी नारीकी क्या गति होगी! किस विकराल अंधकारमय, अनंतशून्यमय, निबिड़ अवसादमय गहन गह्वरकी ओर इस क्रूरा, उत्तेजिता, हिंसामयी रमणीको तुम ढकेले लिए जाते हो! हे मेरे अदृश्य देवता! इस विपुल शून्यकी अनंत छायामें क्या कहीं भी मेरे लिये त्राण नहीं है?

अबला! इस हतभागे देशने नारीको अपने अबलापनपर गर्व करनेकी शिक्षा दी है। प्राचीनतम कालसे हमारे देशकी नारी इसी भावसे प्रेरित होती आई है। इसका फल यह हुआ है कि आज उसमें

न तो स्त्रीत्व ही पाया जाता है, और न पुरुषत्व ही। नपुंसकके भाव भी शायद उससे कहीं अधिक पुष्ट होंगे। कायरकी क्रूरता प्रसिद्ध ही है। आज जब मेरी स्वजातिमें 'नई जागृति' फैलने लगी है तो उसकी चिर-दासत्व-जन्य कायरता अपना क्रूर रूप प्रकट करने लगी है।

देशमें नारी-जागरणके प्रथम सूत्रपातकी भेरीने अपने भैरव-हुंकारसे बड़े-बड़े वीरोंके दिल भी दहला दिए हैं। इस मंगल-शंखनादको सुनकर देशहितैषीगण गद्गद-भावसे पुलकित होकर आनंदाश्रु बहा रहे हैं। मासिक-पत्रोंमें नई-नई उपाधि-प्राप्ता महिलाओंके चित्रोंकी धूम मची हुई है। कौन महिला एम० ए० की परीक्षामें सर्व-प्रथम हुई है; कौन महिला 'बार-प्रेक्टिस' कर रही है; किस रमणी-रत्नको ऑनरेरी मजिस्ट्रेटकी पदवी दी गई; किस वीरांगनाने देशहितका व्रत ग्रहण किया है—इन्हीं सब विषयोंकी चर्चासे देशका वर्त्तमान वायु-मंडल गूँज उठा है। ये सिद्धार्थिनी, कार्य-व्रती, वीर रमणियाँ धन्य हैं! भगवान इनका मंगल करें! पर कहाँ हो तुम मेरी प्यारी सखी शकुंतले! तुम्हारी आत्मामें कभी 'नारीके अधिकार' और 'नारी-जागरण'का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। तुमने कभी युनिवर्सिटीकी शिक्षा प्राप्त नहीं की। तुमने कभी राजनीतिक क्षेत्रमें धूम मचानेकी चेष्टा नहीं की। अपने अंतः-करणके स्वाभाविक माधुर्यसे पुष्ट होकर, अपनी चिरसंगिनी सहकार-लताकी तरह, तुम विना किसी बाह्य संसर्ग और कृत्रिम चेष्टाके प्रकृति माताकी प्रिय कुमारीकी तरह विकसित हो चली थीं। कहाँ हो तुम प्यारी सखी! आज इस चिर-दुःखिनी, चिर-पापिनीको क्या किसी तरह भी तुम्हारे पवित्र चरणोंकी धूलि प्राप्त नहीं हो सकती? हाय सखी, विंश शताब्दीकी उन्नतिके तुमुल कोलाहलसे उकताकर, वर्त्तमान युनिवर्सिटीकी शिक्षासे परितृप्त और सभ्य-समाजके शिष्टाचारकी धूलिसे लिप्त होकर मैं

तुम्हारे तपोवनकी विजन शांतिमें अपनी आत्माको निमज्जित करना चाहती हूँ। क्या कालके उलटे स्रोतमें बहकर मैं किसी प्रकार तुम्हारे पास तक नहीं पहुँच सकती ?

२

दुःखकी ज्वालासे तप्त और पापकी यातनाओंसे उत्तेजित इस पापिनीकी रामकहानीको धैर्यपूर्वक सुननेवाले सहृदय पाठक कितने मिलेंगे ? हाय, जिस देशमें मैंने जन्म लिया है वहाँ पापियोंके प्रति समवेदना प्रकट करना जघन्य पाप समझा जाता है। भगवान्! तब क्यों मैं इस पुण्यके भारसे गुरु-गंभीर देशमें उत्पन्न हुई ? जीवनकी समस्त अनुभूतियोंसे परिचित होनेपर आज मुझे मालूम हो रहा है कि इस देशकी आत्मासे मेरे स्वभावका बहुत कम सामंजस्य है। प्राचीन ग्रीस देशकी उत्तप्त उत्तेजनासे मेरा स्वभाव गठित हुआ है। इस उत्तेजनाकी प्रचंड अग्नि आज तक मेरी आत्माके अतल गर्भमें समाविस्थ थी। आज अचानक आग्नेय-गिरिके विलोल प्लावनकी तरह वह बाहरको फूट निकली है।

इलाहाबादके जिस विशाल भवनमें मेरा जन्म हुआ, उसकी विलासिता शहर-भरमें विख्यात थी। पर उस भवनका जो बदनाम था वह कहाँ तक सत्य था, मैं कह नहीं सकती। क्योंकि बचपनसे ही मैं उसके भीतरके राजसी जीवनमें एक ऐसी मधुर शांतिका अनुभव किया करती थी जिसकी कल्पना भी अब मैं किसी तरह नहीं कर सकती। हाय, भाई-बहनोंके साथ आनंदसे हिल-मिलकर रहने और निर्द्वंद्व भावसे मुक्त विचरकर खेलकूद करनेके उन प्यारे दिनोंको अतीतकी कराल छाया कितनी निष्ठुरताके साथ हरण कर ले गई! नवल-प्रभातके पक्षीकी तरह तब मेरी आत्मा कितनी निष्पाप, कितनी विशुद्ध, और कितनी

आनंदमय थी ! भाई-बहनके बालकपनका निर्मल प्रेम ! कितना दुर्लभ और कितना अमूल्य है ! भाई ? धिक्कार है मुझ हत्यारीको ! किस जले मुँहसे यह शब्द मैं अब निकाल सकती हूँ ? किस निर्लज्ज लेखनीसे इन दो अक्षरोंको लिख सकती हूँ ? भगवान् ! इस बेहयाईका क्या कुछ ठिकाना है ! जान बूझकर अपने प्यारे भाईकी हत्या करके उसीकी गुण-गाथा गानेका पाखंड रचती हूँ ! कुछ भी हो, आज अंतिम बार अपनी निर्लज्ज कहानी समस्त संसारको मुझे सुनानी ही होगी। जब तक वायुमंडलके प्रत्येक अदृश्य अणुके साथ मेरी निर्लज्जता एकप्राण होकर मिल न जाय, तब तक मेरी उत्तप्त आत्माको कभी शांति मिलनेकी नहीं।

मैं कह रही थी कि उस विशाल भवनकी अव्यक्त शांतिमें मेरी बाल्यावस्था बीती थी। हम तीन भाई-बहन थे। मैं सबसे बड़ी थी। मेरा नाम काकीने बड़े लाड़से लज्जावती रक्खा था। (हाय, तब उन्हें क्या खबर थी कि उनकी लाड़िली लड़की ऐसी बेहया निकलेगी!) मुझसे छोटा मेरा भाई राजेंद्रप्रसाद था। घरके सब लोग उसे रज्जन या राजू कहते थे। मुझ कलमुहीको भगवानने असीम सौंदर्य प्रदान किया था। पर रज्जन हम तीनोंमें अधिक रूपवान्, गुणवान् और बुद्धिमान् था। मुझे बहुत ही छोटी अवस्थासे अपने इस भाईका बड़ा गर्व था और मैं उसे जी-जानसे प्यार किया करती थी। भाई मेरे ! आज तुम्हारी बात लिखते-लिखते इन फूटी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी बह रही है। सारा अंतःकरण पिघल-पिघलकर बाहरको निकलना चाहता है। हाय, मुझे कोई बतला सकता है कि किसी जन्ममें इस हत्यारीको फिर कभी तुम मिलोगे ! भैया, तुम जिस नक्षत्रलोकमें हो वहीं सुख और शांतिसे रहो, मैं केवल इतनी ही प्रार्थना भगवानसे करती हूँ। मैं सब तरफ़से हार माननेपर भी यह आशा किसी तरह नहीं छोड़ सकती कि किसी-न-किसी जन्ममें तुम्हारे

दर्शन मुझे फिर मिलेंगे ही। तुम्हारे देवताके समान उन्नत चरित्रकी छत्र-च्छायामें रहकर मैं अपनी आत्माको तुम्हारे ही समान उन्नत बनानेकी चेष्टा एक बार अवश्य करूँगी। जहाँ कहीं भी हो, अपनी इस पापिनी, चिरदु:खिनी बहनको न भूलना! बाल्यकालमें हम तीन भाई-बहनोंने जिस निष्कलुष प्रेमके आनंदमें पगकर दिन बिताए थे, उस मधुर स्मृतिको कभी न बिसारना!

मेरी बहन लीला रजनसे प्राय: ढाई साल छोटी थी। जब मेरी अवस्था दस वर्षकी थी तो रजन सात सालका था और लीलाने पाँचवें वर्षमें पदार्पण किया था। सारे घरसे हम लोगोंका कोई विशेष संबंध नहीं रहता था। हम तीनोंकी दुनिया ही न्यारी थी। हम अपने ही खेल-कूद, राग-रंग और स्नेह-प्रेमके झगड़ेमें मग्न रहा करते थे। हमारी इस एकांत बाल्यलीलामें यदि कोई बाधा थी तो वह हमारी अद्भुत नामवाली 'गवर्नेस' मादमाज़ेल मार्या पावलोवना। इस अद्भुत रूसी महिलाको काका बंबईसे पकड़ लाए थे। बंबईमें वह उनके हाथ कैसे लगी, इसका इतिहास किसीको माऌम नहीं था। वह कब, कैसे और क्यों भारतवर्षमें आई, यह बात भी कोई नहीं जानता था। उसके माँ-बाप वास्तवमें रूसी ही थे या नहीं, काकाको इस संबंधमें भी शक था। कुछ भी हो, वह अँगरेज़ी खूब अच्छी तरहसे बोलती थी और फ्रेंच, जर्मन आदि विलायती भाषाओंसे भी परिचित थी। हिंदोस्तानी भी वह टूटी-फूटी बोल लेती थी। 'क्यों' के बदले वह 'काहे' शब्द काममें लाती थी। ऐसे अद्भुत accent के साथ वह 'काहे' कहती थी कि रजन बिना हँसे नहीं रह सकता था। उसके हँसनेपर वह पूछती—"तुम काहे हँसते हो?" इसपर रजन और भी ज़ोरसे हँस पड़ता और हँसते-हँसते उसके पेटमें बल पड़ जाते,

और आँखोंसे आँसू निकल पड़ते थे। रज्जनको हँसते देखकर मुझे भी हँसी आ जाया करती थी। मैं अक्सर उसके सामने नाच दिया करती थी और गाती थी—

अँगरेज़ी बोली हम बोला—
ट्यरि टूटि टुम !

कभी गाती—

अँगला नाचे बँगला नाचे नाचे गुसलखाना,
मेमसाहबकी चिट्ठी आई, जल्दी भेजो खाना !

वह खीझनेपर भी हँस पड़ती। मेरा नाम उसने 'टॉम ब्वॉय' रक्खा था। हम लोग केवल 'मादमाज़ेल' कहकर उसे पुकारते थे। जब काका उसे पकड़ लाए थे, तब उसकी अवस्था शायद ३० वर्षसे अधिक नहीं होगी। पर उसके मुँहमें इसी अवस्थामें झुर्रियाँ पड़ गई थीं, गालोंकी हड्डियाँ साफ़ दिखलाई देने लगी थीं और आँखोंके नीचे गढ़े पड़ गए थे। रज्जन उसे यह कहकर खिझाता था—"पावलोवना—ढल गया तेरा जोबना!" वह इस अज्ञान बालकके निष्पाप व्यंगका अर्थ नहीं समझती थी। एक दिन मुझसे पूछनेपर मैंने इसका अर्थ बतला दिया। तब तो मादमाज़ेल ऐसी बुरी तरह बिगड़ उठी कि हम दोनोंपर बेभावकी मार पड़ी। मार खा चुकने पर मैं रज्जनको अपने सोनेके कमरेमें ले गई और उसे अपने गलेसे लगाकर उसका मुँह चूमा, उसकी पीठपर हाथ फेरकर दिलासा दिया। बेंतकी चोटसे हम दोनोंके हाथोंमें खून उछल पड़ा था और छाले पड़ गए थे। अपने हाथकी परवा न कर अपनी साड़ीके अंचलको मुँहकी भाफ़से गरमकर मैं उसके हाथ सेंकने लगी। भाईकी पीड़ासे मेरा कलेजा फटा जाता था। मैं उसके हाथोंको सेंकती जाती थी और मेरी आँखोंसे आँसू बहते

जाते थे। रजन शायद समझ रहा था कि मैं अपने दर्दकी वजहसे रो रही हूँ। इस लिये वह बीच-बीचमें पूछता जाता था—"दीदी, क्या बहुत दर्द हो रहा है?"

उस दिनसे हम दोनोंने मार्या पावलोवनाका नाम 'मादमाज़ेल पूतना' रख दिया और इस नए आविष्कारसे हम दोनोंको बहुत प्रसन्नता हुई। और तो क्या, हम कभी कभी उसके सामने भी उसे पुकार बैठते थे—'मादमाज़ेल पूतना!' वह हमारी ग़लती सुधारकर कहती थी—'पाव-लोवना कहो!' मैं अँगरेज़ीमें कहती—"माफ़ कीजिए, भूल हो गई! मैं फिर-फिर आपका नाम भूल जाती हूँ। क्या कहा—मादमाज़ेल पूतना?" वह झिड़ककर बोलती—"फिर वही ग़लती!" पर हम लोग बीच-बीचमें फिर-फिर वही ग़लती करके इसी नवाविष्कृत नामका इस्ते-माल करते थे। इस नामके अर्थका रहस्य उसे मालूम नहीं था।

३

मादमाज़ेल हमें अँगरेज़ी पढ़ाया करती थी और यथासंभव अँगरेज़ीमें ही बातें करनेके लिये बाध्य किया करती थी। इसका फल यह हुआ कि हम लोग बहुत जल्दी शुद्ध अँगरेज़ी बोलना सीख गए। मादमाज़े-लने हमारे लिये विलायतसे चार-पाँच साप्ताहिक तथा मासिक पत्र मँगवा दिए। किस्से-कहानियोंसे भरे हुए उन पत्रोंको पाकर रजन और मैं फूले न समाए। कहानियोंका चस्का बड़ा बुरा होता है। हम लोग इस लतमें ऐसी बुरी तरह फँस गए कि गवर्नेससे छुट्टी पाते ही खाने-पीनेकी सुध भूलकर कहानियोंके पीछे लग जाते। रजन एक कुर्सी पकड़कर एक कोनेमें बैठ जाता और मैं एक कोचमें बैठकर पढ़ती। जब कोई हँसीकी या

अचरज-भरी बात होती तो हम एक-दूसरेको सुना दिया करते और फिर चुपचाप अपने मनमें पढ़ने लग जाते।

मेरी अवस्था अब बारह वर्षकी हो गई थी और रज्जू नौ वर्षका था। लीला अक्सर अम्माँके साथ रहती थी, पर अब वह भी धीरे-धीरे हम दोनोंके साथ हेलमेल बढ़ाने लगी। काकाने मुझे 'क्रॉथ्सवेट' विद्यालयमें भरती करवा दिया। छठे दरजेमें मैं रक्खी गई। आरंभमें तो मेरे लिये स्कूलमें समय बिताना बड़ा दूभर हो गया। मैं अवसर पाते ही अलग एक कोनेमें जाकर रोया करती और किसी लड़कीसे बातें तक न करती। घर लौटकर रज्जनको देखते ही आनंदसे फूली न समाती और पुस्तकोंको ज़मीनपर पटककर उसे अपनी दुःखभरी बातें सुनाकर कलेजा ठंडा करती। पर स्कूलकी लड़कियाँ शायद आरंभसे ही मुझे प्यार करने लगी थीं। इसका कारण मैं ठीक बतला नहीं सकती। शायद मेरे मुखमें एक करुण, सुकुमार और स्नेहपूर्ण कांति वर्तमान थी, जिसकी अवज्ञा नहीं की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त मुझे इतनी छोटी अवस्थामें ही विशुद्ध अँगरेज़ी बोलते और लिखते देखकर भी शायद सबके हृदयमें मेरे प्रति प्रशंसा उमड़ पड़ी थी। हाय, संसारको इसकी क्या खबर कि इस विपुल विश्वकी भीतरी आत्मामें प्रवेश करनेके लिये और भगवानकी अज्ञेय पाठशालामें भरती होनेके लिये जिस आभ्यंतरिक भाषाकी आवश्यकता है उसका ज्ञान न अँगरेज़ी सीखनेसे हो सकता है, न लैटिनसे और न ग्रीकसे। दुनियाको यह बात कैसे समझाई जाय कि अँगरेज़ी और फ्रेंचका ज्ञान होना अत्यंत तुच्छ बात है। भगवानके यहाँ जिस ज्ञानकी क़द्र होती है वह, संभव है, एक अशिक्षिततम कृषक-रमणीसे भी सीखी जा सके! ख़ैर। इन सब फ़ालतू बातोंसे मैं अपने पाठक-पाठिकाओंकी धैर्यच्युति नहीं करना चाहती। मेरे दर्जेकी और

बड़े दर्जोंकी लड़कियाँ भी मेरे प्रति अकारण प्रीतिका भाव प्रदर्शित करने लगीं। पंडितानियाँ भी मेरे ऊपर मेहेरबान थीं। धीरे-धीरे मैं लड़कियोंसे हिलमिल गई और डिबेट, ड्रामा आदिमें भाग लेकर स्कूल-भरमें सर्वप्रिय हो गई।

स्कूलमें मुझे तीन वर्ष हो गए। इस बीचमें मैंने वहाँ जो 'अलौकिक ज्ञान' प्राप्त किया उससे परम पुलकित हो उठी। पर रह-रहकर एक अन्यमनस्क भाव अपने सुकुमार और मधुर विषादकी छायासे मुझे विकल करने लगा। संसारके कोलाहलमें सम्मिलित होनेपर भी मैं अपने हृदयकी निविड़ विजनतामें ही दिन बिताने लगी। कभी बगीचेके एक बेंचपर बैठकर शरत्संध्याके सूर्यास्तकी स्वर्णच्छटा देखती और हृदयमें एक प्रकारकी सुकुमार वेदना उमड़ पड़ती। ऐसा मालूम होता जैसे इस घूलि-मय कर्मचक्रके परे कहीं अनंगमोहन राजकुमारों और विलासवती परियोंकी प्रेमलीला आनंदकी लहरियोंके ऊपरसे होकर बहती चली जाती है, पर मैं यद्यपि परियोंसे कम रूपवती नहीं हूँ, मेरा हृदय यद्यपि परियोंके हृदय-से कम रसमय नहीं है, तथापि मैं चिरकालके लिये उस राग-रंगमय लीलासे वंचित की गई हूँ। नारी-हृदयका मान-अभिमान कितना भयंकर होता है, इसे पुरुष-पाठक कैसे समझेंगे? मुझ मानिनीका हृदय इसी विकट अभिमानके भावसे फूल उठता था। सुबहको जब मेरी नींद टूटती तो जिस विलासमय वेदनाका दीर्घनिःश्वास बेवस मेरे हृदयसे निकल पड़ता उसका वर्णन मैं कैसे करूँ?

मुझे भय होने लगा कि धीरे-धीरे राजूके साथ मेरा संबंध विच्छिन्न होता चला जाता है। पर फिर भी हम दोनोंके स्नेह-प्रेमके झगड़े और खेल वैसे ही जारी थे। मैं अब भी उसे खिझाती थी। कभी कागज़की एक गधा-टोपी बनाकर बेमालूम उसके सिरमें डाल देती थी। कभी जब

वह कुर्सीमें बैठकर कहानी पढ़नेमें व्यस्त रहता तो उसे उठाकर और बातोंमें भुलाकर कुर्सीको चुपकेसे पीछे खिसका देती और तब उसे बैठनेके लिये कहती । वह ज्योंही बैठने जाता त्योंही धड़ामसे ज़मीनपर गिर पड़ता । मैं खिलखिलाकर हँस पड़ती । वह नकियाता हुआ, बड़-बड़ाता हुआ उठ बैठता और फिर मुस्कुराकर फ्रेंच भाषामें गाली देते हुए कहता—"आँफाँ तेरिब्ल !" (Enfant terrible)* हम लोग अब फ्रांसीसी भाषा सीखने लगे थे । कभी ऐसा होता कि मैं राजूको घूँसोंसे मारती और राजू भी उन घूँसोंका जवाब घूँसोंमें देता । इस घूँसे-बाज़ीको देखकर लीला रोती हुई अम्माँके पास जाती और हमारी शिका-यत करके उन्हें बुला लाती । एक दिन इसी तरह हम दोनोंकी घूँसे-बाज़ी चल रही थी । लीलाकी जासूसीके फलस्वरूप अम्माँ दबे पाँव आ खड़ी हुईं । अम्माँको देखकर हम लोग बाघकी तरह डरते थे । हम दोनों सन्न रह गए । अम्माँ कुछ मिनटों तक आँखें लाल किए हुए चुपचाप खड़ी रहीं । फिर बोलीं—"शाबाश लज्जा, शाबाश ! वाह रज्जू, तू भी बहुत होशियार हो गया है ! यही तुम लोगोंकी पढ़ाई हो रही है । कहाँ गई मादमाज़ेल पावलोवना ? वह राँड क्या यों ही दो सौ रुपए लेती है ? इधर इन छोकरे-छोकरियोंकी यह हालत है ! कोई देखनेवाला नहीं, कोई सुननेवाला नहीं । इनके काकाने इन्हें सिरपर चढ़ा लिया है । जब लकड़ीकी मारसे इन लोगोंकी हड्डियाँ दुरुस्त की जातीं, तब कहीं ये ठिकाने आते ! उस गोरी राँड़की पाँचों घीमें तर हैं । कुछ मिहनत नहीं, कोई काम नहीं । घूमती-फिरती है, मोटरमें सैर करती है, नाच-पार्टियोंमें जाती है और हरामके दो सौ रुपए हर महीने बैंकमें जमा करती है ।"

---

* बेजा बातें बकनेवाली बालिका ।

'गोरी राँड़'से अम्माँ बेतरह जलती थीं। उनके लिये इसका कारण भी था। उन्हें शायद यह संदेह था कि काकाका उसके साथ अनुचित संबंध रहता है। यह संदेह कहाँ तक सच था, मैं कह नहीं सकती। पर काकाके प्रति मेरे मनमें यथेष्ट श्रद्धा थी। उनकी तीव्र बुद्धि, विशाल और स्नेहपूर्ण हृदय तथा उन्नत और मधुर स्वभावका मुझे गर्व था। अम्माँसे मैं अपने मनकी कोई भी बात खोलकर नहीं कह सकती थी। पर काकासे कोई बात छिपा नहीं रखती थी; गुप्त-से-गुप्त बात भी बिना किसी झिझकके कह देती।

कुछ भी हो, अम्माँकी झिड़कियोंकी हमें आदतसी पड़ गई थी। इसलिये उनके चले जानेपर हम दोनों खूब जोरसे हँसने लगे। लीलाको पकड़कर मैंने उसे अपनी गोदमें बैठाया और उसका मुँह चूमकर पूछा—"तूने अम्माँसे क्या कहा री पगली?" वह चुप रही। मैंने फिर एक बार उसे चूमकर कहा—"दीदी और भैयाकी शिकायत अम्माँसे करने गई थी? वह हमें जब मार बैठतीं तब?"

वह बोली—"क्यों तुम भैयाको घूँसोंसे मार रही थीं?"

"अच्छा, अबसे नहीं मारूँगी भैना! तू भी शिकायत मत करियो। भला?"

वह बोली—"नहीं करूँगी।"

४

काका हिंदोस्तान-भरकी बड़ी बड़ी देसी कंपनियों और मिलोंके शेयरहोल्डर थे। वह विलायतमें भी एक छोटा-सा हिंदोस्तानी होटल खोलनेका इरादा कर रहे थे। उनकी गणना युक्तप्रांतके सर्वश्रेष्ठ धनाधिपतियोंमें थी। इधर कुछ वर्षोंसे वह राजनीतिक क्षेत्रमें सम्मिलित

हो गए थे और चौबीसों घंटे राजनीतिक चर्चामें ही निमग्न रहते थे। प्रांतके बड़े-बड़े नेता उनसे मिलने आते थे और उनकी सलाह लेकर जाते थे। काका लोकमान्य तिलकके बड़े कट्टर भक्त थे। सभीको माल्म है कि जब लोकमान्य अंतिम बार जेलसे छूटकर आए थे तो आते ही उन्होंने देशभरमें स्वराज्यकी धूम मचा दी थी। काका तब तक राजनीतिक सभाओंमें विशेष रूपसे भाग नहीं लेते थे। पर इस पुनर्जागृत आंदोलनसे उनकी चित्तवृत्ति भी भड़क उठी। उनके जिस भवनका नाम पहले 'विलास-भवन' था, उसका नाम बदलकर उन्होंने 'स्वराज्य-भवन' रख दिया और खुले दिलसे राजनीतिक सम्मेलनोंमें सम्मिलित होने लगे। अनेक स्वदेशी संस्थाओंको उन्होंने आर्थिक सहायता दी। उनकी बातोंमें और उनके कार्यमें दृढ़ता और सहृदयता थी। इसलिये थोड़े ही दिनोंमें राजनीतिक क्षेत्रमें उनकी धाक जम गई। अम्माँको भी उन्होंने ज़बर्दस्ती अपने साथ घसीटा। इसका फल यह हुआ कि वह भी सार्वजनिक सभाओंमें वक्तृता देने लगीं और लोगोंके धन्य-धन्य रवसे उत्साहित होकर घर-गृहस्थीके सब काम भूलकर 'देशोद्धार' की चिंतामें लग गईं। अम्माँ जब देशहितकी ख़ातिर नेताओंके साथ परामर्श करनेमें व्यस्त रहनेके कारण बाल-बच्चोंकी सुधि भी भूलने लगीं तो काकाको हमारे लिये एक 'गवर्नेस' रखनेकी चिंता हुई। मादमाज़ेल मार्या पावलोवना इसी चिंताका फल थी। इसके पहले हमारे लिये एक साधारण धाई नियुक्त थी।

जलियानवाला बाग़की रक्तोत्तेजक घटनाके कारण देश-भरमें आत्म-बलिदानका रव गूँज उठा। अलकापुरीके स्वप्नोंसे मोहाच्छन्न मेरे नव-वसंत-मय हृदयमें इस घटनासे कुछ आघात पहुँचा; पर बहुत हल्का। किंतु राजू एकदम अग्निमय हो उठा। उस समय उसकी अवस्था प्रायः

चौदह वर्षकी होगी। इस छोटी अवस्थामें ही वह उत्तेजित होने लगा और राजनीतिक विज्ञानके बड़े-बड़े जटिल ग्रंथोंके अध्ययनमें अपने दिन बिताने लगा। वह ऐंग्लो-इंडियन स्कूलमें पढ़ता था। उसने विद्रोहकी उत्तेजनाके कारण स्कूलमें जाना छोड़ दिया। असहयोग आंदोलनके पहलेसे ही वह असहयोगी हो गया था!

राजनीतिक ग्रंथोंका उसने बहुत अध्ययन किया। पर उनसे उसे विशेष संतोष नहीं हुआ। हाँ, एक बात अवश्य हुई। वह यह कि उसे गंभीर विषयोंके अध्ययनका चस्का लग गया। आज तक वह मेरी ही तरह केवल तुच्छ क़िस्से–कहानियोंकी किताबोंको ही पढ़ा करता था। अब वह दर्शन, इतिहास, फिज़िक्स, केमिस्ट्री, बायोलॉजी, और तो क्या डॉक्टरीकी किताबोंको भी मननपूर्वक पढ़ने लगा। पाठकोंको अवश्य ही मेरी इस बातपर आश्चर्य होगा और यह अवश्य ही औपन्यासिक अत्युक्ति समझी जायगी। इतनी छोटी अवस्थामें ऐसे-ऐसे गहन विषयोंपर मनन करनेकी प्रवृत्तिका होना आश्चर्यकी ही बात है, इसमें संदेह नहीं। पर उसकी बुद्धि कैसी असाधारण थी और उसकी स्मरणशक्ति कितनी तीव्र थी, यह बात वे लोग जानते हैं जिन्होंने उसे देखा है। केवल बुद्धि ही नहीं, उसकी ज्ञान-पिपासा भी अत्यंत उत्कट थी। वह पब्लिक लाइब्रेरीमें जाकर घंटों वहीं समय काट देता।

अचानक उसे साहित्यकी धुन सवार हुई। संसार-साहित्यके पुराने और कीड़ों द्वारा नष्ट किए गए ग्रंथोंसे लेकर आधुनिकतम साहित्यिक रचनाओंका रस वह ग्रहण करने लगा। हमारे कुटुंबमें स्वदेशीपनका ज़ोर होनेपर भी हिंदीकी चर्चा आवश्यकतासे भी कम हुआ करती थी। हिंदीकी कोई भी मासिक-पत्रिका हमारे यहाँ नहीं आती थी। फ्रेंच और अंगरेज़ीके चटकीले–भड़कीले पत्र–पत्रिकाओंसे ही सब अलमारियाँ

भरी रहती थीं। रज्जनने झट हिंदीकी दो तीन प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ मँग-वाईं। अब वह हिंदी लिखनेका अभ्यास करने लगा और थोड़े ही दिनोंमें एक कविता लिखकर मेरे पास ले आया। उसकी यह नई मनोवृत्ति देखकर मैं हँसते-हँसते लोटपोट हो गई। उसकी कविताका अर्थ मैं कुछ भी समझ न पाई, केवल हँसते-हँसते मेरे पेटमें बल पड़ गए। उस कविताकी पहली दो पंक्तियाँ मुझे अभी तक याद हैं—

इस निष्ठुर भौतिक लीलाका पार नहीं पाया भगवान्!
दहल-दहल उठता है यह दिल सुन-सुनकर पैशाचिक गान!

असलमें इस कवितामें हँसनेकी कोई बात नहीं थी। बल्कि उत्कट विभीषिकाका विष ही उसमें मथित हुआ था। पर मुझे कवितापर हँसी नहीं आई थी। हँसी आई थी रज्जनकी ख़ामख़यालीपर। रज्जनने वह कविता काकाको दिखलाई। काकाने उसकी हार्दिक प्रशंसा की और इतने प्रसन्न हुए कि तत्काल एक हज़ार रुपयेका चेक लिखकर पुरस्कार-स्वरूप रज्जनको प्रदान कर दिया। उस समय रज्जनकी सुंदर दैदीप्यमान आँखोंमें जो तीव्र उल्लास व्यक्त हुआ था वह अब तक मेरी आत्मामें अंकित है। भाईकी योग्यताके गर्वसे मेरी छाती फूल उठी। मैं यह बात नहीं छिपाना चाहती कि राजूको एक साथ एक हज़ारका पुरस्कार पाते देखकर मेरे हृदयमें नारी-सुलभ विद्वेषका भाव भी कुछ-कुछ जागरित हुआ था; पर इसके साथ ही उसके प्रति आंतरिक स्नेह भी द्विगुण वेगसे उमड़ चला।

अपने कमरेमें ले जाकर राजूने मुझे उस कविताका भीतरी मर्म समझाया। एँसीरिया, बेबिलोनिया, मिसर और रोमकी प्राचीन सभ्यताओंका अध्ययन उसने ख़ूब अच्छी तरहसे किया था। उसने समझाया कि भौतिक सभ्यताकी राक्षसी शक्ति उन्मत्त लास्य-लीलाकी कैसी कैसी

करामातें दिखला सकती है। बेबिलोनियामें लाखों टनोंके वजनकी प्रकांड मूर्त्तियाँ लाखों दासों द्वारा सारे शहरमें फिराई जाती थीं। जगत्-प्रसिद्ध ईफ़ेल टॉवरसे भी ऊँची गगनचुंबी मीनारें; सड़कके हज़ारों फ़ीट ऊपर, आकाश-मार्गसे होकर जानेवाले, मीलों तक विस्तृत राज-पथ; नाच-रंग और पाशविक आमोद-प्रमोदके लिये रचे गए एक-एक वर्ग मील तक फैले हुए सुविशाल विलास-कक्ष; जीवनके आनंदसे अपरिचित, स्वाभाविक स्वातंत्र्यसे वंचित, असंख्य दास-दासियोंका बाजारमें क्रयविक्रय आदि अनेक रहस्यपूर्ण तथा रोचक ऐतिहासिक बातोंका विस्तृत वर्णन करके उसने कहा कि सात हज़ार वर्ष पूर्वकी इस घोर राक्षसी ऐँसीरियन सभ्यताने अपनी उन्मत्त शक्तिके विलाससे मानव-जीवनको कितना निरानंद बना दिया था! मिसरकी सभ्यताका भी यही हाल था। रेगिस्तानके बीचमें दिलको दहला देनेवाले, आत्माको आतंकसे कंपित कर देनेवाले, भीषणाकार ठोस पिरामिडोंके निर्माणमें कितने असंख्य नर-मुंडोंका संहार हुआ होगा, इसकी क्या कोई व्यक्ति कल्पना भी कर सकता है! वहाँके 'फारो' वंशकी खामखयालियोंको तृप्त करनेके लिये मानवी आत्माका रस कितनी निर्दयताके साथ निचोड़ा गया था, इसका क्या कुछ ठिकाना है! रोमके 'कॉलीजियम' तथा अन्य प्रकांड विलास-गृहोंमें धनी दर्शक-गण किस प्रकार गुलामोंकी निष्ठुर संहार-लीला देखकर तृप्त होते थे और राज्य-विस्तारके लोभसे सीज़र प्रमुख शासकगण किस प्रकार महा-युद्धोंमें असंख्य नरोंका विनाश साधित करनेमें व्यस्त रहते थे, यह बात उसने विस्तारपूर्वक समझाई। उसने कहा—तबसे आज तक मानव-जाति उसी प्रबल भौतिक शक्तिके ताड़नसे क्षत-विक्षत होती आई है। वर्त्तमान विष-भरी सभ्यताकी फुफकार उसी प्राचीन गर्जनकी प्रतिध्वनि है। धर्म-ग्रंथोंमें कहा गया है कि ईश्वर दयामय है। यदि शक्तिके ताड़-

नसे आहत असंख्य प्राणियोंके हृदय-विदारक हाहाकारके प्रति वज्र-उदासीनताको ही दया कहते हैं, तो निर्दयता शब्द ही निरर्थक है। कर्म-फलका सिद्धांत बिलकुल ढोंग है। जो असहाय, अशिक्षित, कर्मजीवी लोग अपने अस्तित्वका ही अर्थ नहीं समझते, उन्हें कर्मोंका दंड देना कभी न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। ऐसे सरल-प्रकृति, दीन-हीन व्यक्तियोंके ऊपर पाप-पुण्यका ढकोसला आरोपित करना अतिशय क्रूरता है।"

विश्व-नियंत्रिणी किसी अज्ञात शक्तिके प्रति व्यर्थ आक्रोशसे गर्जन करते हुए राजू बोला—"इन्हीं सब बातोंको सोचकर मैं पागल हुआ जाता हूँ, दीदी! मानव-जीवनका क्या अर्थ है, मनुष्यकी अत्यंत जटिल प्रकृतिका क्या नियम है, कोई व्यक्ति दस वर्ष जीए या सौ वर्ष, इससे क्या फ़र्क पड़ता है, राजनीतिक चर्चा, समाज-सुधार, ग्रंथ-रचना, देशोद्धार और विश्व-विजयमें रत रहनेसे मनुष्य सचमुच अपनी उन्नति कर सकता है या नहीं, इन सब विचारोंसे मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। संसारके सभी श्रेष्ठ ज्ञानियोंकी रचनाओंका अध्ययन मैंने किया है। पर सभीकी बातें मुझे निखिलव्यापी निष्ठुरताके सामने पोपली लगती हैं। संसारके प्राचीन और आधुनिक नेताओंके सयानेपनके ढोंगसे मेरी आत्मा भड़क उठती है—जैसे सृष्टिका सारा रहस्य इन लोगोंके करतल-गत हो गया हो! इस अव्यक्त चक्रके व्यक्त पैशाचिक अट्टहासका मर्म अज्ञेय और अज्ञात है—इसे जाननेकी चेष्टा न कर, इस जटिल समस्याको सुलझानेके लिये प्रवृत्त न होकर जो लोग बाह्य कर्मोंसे मानव-जातिके उपकारका पाखंड रचते हैं, वे प्राकृतिक अत्याचारके ऊपर अपना अत्याचार और जोड़कर चिर-पीड़ित मानव-समाजको और भी अधिक भार-ग्रस्त करते हैं।"

कौतूहल, भय, विस्मय और हर्षने एक साथ मिलकर मेरे हृदयको आंदोलित कर दिया। मैंने स्पष्ट देखा कि मेरा यह असाधारण भाई संसारके रात-दिनके तुच्छ सुख-दुःखमें लिप्त होनेके लिये पैदा नहीं हुआ है। उसकी चिंता-धारा उसे किस अपरिचित लोकको खींचे लिए जाती है, यह सोचकर मैं आतंकसे काँप उठी। जिस भाईको मैं अपने तुच्छ जीवनके संकीर्ण मंडलके भीतर बाँधकर अपना ही समझे बैठी थी, आज उसके बंधन-मुक्त होनेकी प्रवृत्तिसे परिचित होकर भय-विह्वल-सी हो गई।

६

यदि सच पूछा जाय तो उस समय मैं रञ्जनको अच्छी तरहसे समझ भी नहीं पाई थी। आज समझने लगी हूँ। भीतर ही भीतर प्रतिभाकी कैसी उत्तप्त आँचसे पीड़ित होकर वह छटपटा रहा था! भगवान बुद्ध एक दिन इसी भीषण ज्वालासे झुलसे थे। बुद्धकी और उसकी विचार-धारामें बहुत कुछ अंतर था, इसमें संदेह नहीं। पर अग्नि चाहे किसी भी रूपमें हो, उसका गुणधर्म सदा एक-सा रहता है। अगर मेरे कारण उसकी हत्या न हुई होती तो आज संसार देखता कि विजन अंधकारका जो यह तारा शीतल-भावसे टिमटिमा रहा था उसके भीतर प्रलयांतक वह्नि-ज्वाला लेलिहान हो रही थी। पर अब इन फ़ालतू बातोंसे क्या फ़ायदा!

कुछ भी हो, मैं समझ गई कि इस भाईको मैं प्यार किए विना नहीं रह सकती, पर उसका साथ किसी प्रकार नहीं दे सकती। मैं अपने नव-मल्लिका-मय, मलय-कोमल, मोहाच्छन्नकारी, मधु-मय स्वप्नोंको लेकर ही दिन बिताने लगी। खाते-पीते, सोते-जागते मुझे मेरे भीतर अव्यक्त रूपमें

स्फुरित हुए मृग-मदका सौरभ आकुल करने लगा। रज्जू प्रकृतिके भीतर शक्तिकी कठोरताको देखकर त्रस्त था, मैं उसीके कुसुम-कोमल माया-स्पर्शसे पिघली पड़ती थी।

हाय हतभागिनी नारी! पुरुषके विना तुम्हारा जीवन ही नहीं है। पुरुषको लेकर ही इस अनंतव्यापी, 'ईथर'—प्रकंपित सृष्टिमें तुम्हारी सत्ता है; अन्यथा तुम शून्यकी तरह निस्तरंग, जड़ और निर्विकार हो। पुरुषको अपने हृदयकी कमनीय सुकुमारतासे रिझानेमें ही तुम्हारी सार्थकता है। एक ओर तुम पुरुषके बलिष्ठ स्वभावकी गरिमाका प्रभाव अपने ऊपर अनुभव करके विकल पुलकसे रोमांचित हो उठती हो, दूसरी तरफ़ अनंत-संख्यक पुरुषोंको अपने रूप-जालमें दृढ़तासे जकड़े विना तुम्हारी अतृप्त आत्मा छटपटाती रहती है। हे निष्ठुरा, मायाविनी, चक्रिणी नाग-कन्या! पुरुष-जातिके बलिष्ठ और उन्नत प्रेमके विना तुम मृत हो, तथापि उसीके विनाशका संकल्प करके तुम सृष्टिमें अवतरी हो। हे बालभक्षिणी, भ्राता-संहारिणी पूतना! संतानके सुमंगल स्नेहसे ही तुम रसवती हो, तथापि उसीके निग्रह, उसीकी हत्याका व्रत तुमने लिया है। हाय, मुझे कौन बतावेगा कि मैं किस जन्ममें और कैसे नारी-योनिसे मुक्ति पाकर या तो पुरुष-योनि या पक्षीकी योनिमें जन्म ग्रहण करूँगी! यदि पुरुष-योनिमें मेरा जन्म हो सकेगा तो सृष्टिके नाना कर्मोंमें सम्मिलित होकर, मृत्युके दुस्तर सागरको पार करके अंतमें अमृतमय आनंदरूपमें एक-प्राण हो जाऊँगी। यदि पक्षी-योनिमें जन्म लूँगी तो जीवन-मृत्यु, पाप-पुण्य और स्नेह-प्रेमके बंधनसे मुक्त होकर द्विधाहीन और चिंताहीन भावसे विशुद्ध सौंदर्य और निर्लेप उमंगके रसमें डूबी रहूँगी।

कहाँ हो तुम अनुपम-रूपवती, ग्रीक-सुंदरी हेलेन! एक ज़माना था जब तुमने समस्त पुरुष-जातिको अपने अलौकिक रूपके बलसे अपने

अंचलके मृत्यु-मोहक जालमें जकड़ लिया था। हाय, रक्त-पिपासिनी, पुष्प-कोमलांगी दैत्य-बाला! तुम्हारे ही लिये ट्रॉयके प्रलयांतक युद्धमें असंख्य नर-मुंडोंका विनाश हुआ था। अपने रूपके शाणित अस्त्रकी परीक्षामें रत रहकर अंतको तुमने अपना ही विनाश किया था। अस्त्र-परीक्षाकी यही घातक प्रवृत्ति मेरे हृदयमें भी एक बार धधक उठी थी। ग्रीस देशके बड़े बड़े कवियोंने अपने काव्योंमें तुम्हारी ही गाथा गाई है। संभव है, इस पिशाचिनी नारीकी रूपगाथा भी भविष्यमें कोई कवि वर्णित करेगा। पर स्त्री-हृदयकी राक्षसीवृत्तिका पार क्या वीर और सहृदय पुरुष-जाति कभी पा सकती है?

७

पर इसी पुरुष-जातिने मुझे कितना धोखा दिया है, यह बात मैं किस मुँहसे और कैसे लोगोंको समझाऊँ? स्त्री-जातिके प्रति मेरे हृदयमें घातक भाव उमड़ पड़े हैं, इसमें संदेह नहीं। पर पुरुषके प्रति भी तो प्रतिहिंसासे मेरी आत्मा रह-रहकर काँप उठती है! नाश! नाश! मेरे लिये कोई आशा शेष नहीं रह गई है, देवता!—

काकाके पास मिलनार्थी लोगोंके आने-जानेका ताँता नित्य लगा रहता था। मैं भी अक्सर उनके कमरेमें आलस्यके भारसे झूमती हुई, विना किसी उद्देश्यके, उनके बगलमें बैठ जाया करती थी, और यद्यपि मैंने प्रथम यौवनमें पदार्पण कर लिया था, तथापि बच्चोंकी तरह भरी सभामें उनके गलेसे लिपट जाती थी। कारण क्या था, मैं कह नहीं सकती, पर काका मुझे ही सबसे अधिक प्यार करते थे। मैं उनके मुँह लगी हुई थी और वह मेरी सब हठों और ज्यादतियोंको प्रसन्नता-पूर्वक सहन करते थे?

मैं बिना उद्देश्यके तो आती थी, पर एक अस्पष्ट उद्देश्य मेरे अंत-स्तलमें वर्त्तमान रहता था। वह उद्देश्य था लुब्ध और मुग्ध पुरुषोंको अपने अतुल रूपसे छकानेका। हाय अधम नारी!

अधिक करके राजनीतिक चर्चा ही वहाँ छिड़ी रहती थी। यद्यपि मुझे राजूकी तरह ज्ञानकी पिपासा नहीं थी, फिर भी मदमाती आँखोंसे संसारको देखकर, अलसाते हुए मनसे संसारकी सभी बातें सुननेका शौक़ रखती थी। दुनियाकी सभी नई-नई बातोंमें मुझे क़िस्से—कहा-नियोंका—सा रस मिलता था। इसलिये काकाके पास एकत्रित हुए नेताओंपर अपने अस्त्रकी परीक्षामें रत रहकर मैं सभी बातें सुना करती थी। न तो किसी पुरुषके दर्शनसे मेरे हृदयमें अधिक प्रभाव पड़ता था, न किसीके दर्शनसे कम। केवल सबकी समष्टिके सामंजस्यसे मेरा हृदय उल्लसित हो उठता था। जब इस नित्यकी परिचित सभासे लौटकर मैं अपने कमरेमें आती तो एक आकाश—पातालव्यापी अवसाद-के भावसे मेरा हृदय दब जाता था। तब मै रोनेकी इच्छा होनेपर भी नहीं रो सकती थी, सोचनेपर भी कुछ सोच नहीं सकती थी। केवल अपने अकेलेपनसे घबराकर काँप उठती थी।

अचानक इस वैचित्र्यहीन पुरुष-समाजके चिर-पुरातन वायु-मंडलके ऊपर अपनी नवीनतासे तरंगित होते हुए दो पूर्ण-यौवन-प्राप्त असाधारण युवक कैसे और कबसे मेरी आँखोंको विशेष रूपसे अपने अधिकारमें करने लगे, आरंभमें मुझे इसका कुछ पता भी न चला। इन दोनोंमेंसे एक सज्जन डाक्टर थे। उनका नाम कन्हैयालाल था। दूसरे महाशय कालेजके प्रोफ़ेसर थे। उनका नाम किशोरीमोहन था। प्रोफ़ेसर साहबको तो मैं पहलेसे ही जानती थी। वह "क्रॉथ्सवेट" की छात्रियोंको एक घंटा अंगरेज़ी पढ़ानेके लिये आया करते थे। पर आज तक उनसे मेरा

संबंध केवल गुरु-शिष्यका था। अब मुझे उनके साथ मित्रताका संबंध स्थापित होनेकी आशा हुई। डाक्टर साहबको मैं पहले बिलकुल नहीं जानती थी। इन दोनों मित्रोंके शुभागमनसे मेरे जीवनका इतिहास विशेष रूपसे संबंधित है। इसलिये इसी विषयकी चर्चा मैं मुख्य रूपसे करूँगी।

बहुत संभव है, इस अभागिनीकी कहानीको पढ़नेवाली कुछ ऐसी पाठिकाएँ भी होंगी जो पतिकी पूजामें, बाल-बच्चोंके पालनेमें, अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवामें, समस्त संसारके मंगलार्थ तीज और मंगलके पुण्य व्रत रखनेमें, कल्याणीया देवीकी तरह घर-गिरस्तीके काम-काजमें रत रहकर बड़ी कठिनाईसे फ़ालतू किताबोंके पढ़नेके लिये समय निकालती होंगी। इन सब देवियोंको मंगल-कर्मोंसे अनभिज्ञ इस पापिनीकी बातें बिलकुल अनोखी और अचरज-भरी जान पड़ेंगी। मैं जानती हूँ कि मेरी कथा संसारसे निराली है। मैं पुण्यमय गार्हस्थ्य जीवनसे अनभिज्ञ हूँ। पर फिर भी सभी नारियोंकी तरह मेरी नसोंमें भी तो प्राणकी वही एक ही धारा बह रही है! हे मेरी प्यारी माताओ और बहनो! इस अधम नारीके हृदयमें चाहे कितनी ही घृणा भरी हो, पर मैं प्रार्थना करती हूँ, तुम अपनी पवित्र आत्माओंको घृणासे मलिन न करके मेरी दुःख-भरी पाप-पूर्ण बातोंके उपर अपनी सुकुमार करुणा और सहृदयताका अमृत बरसा दो!

८

डाक्टर कन्हैयालाल और प्रोफ़ेसर किशोरीमोहनमें गाढ़ी मित्रता थी। दोनों फुर्तीले, बोलनेमें तेज, बातें बनानेमें कुशल और सभा-चतुर थे। तुच्छसे-तुच्छ घटनापर भी ये मित्रद्वय अपने रचना-कौशलसे

ऐसा महत्व आरोपित कर देते थे और उसे इस तरह रोचक बना देते थे कि सब सुननेवाले दंग रह जाते। थोड़े ही दिनोंमें इन मिलनसार मित्रोंने काकाकी सारी सभामें अपनी धाक जमा दी। शायद काकाको इन दोनोका भीतरी हाल मालूम हो गया था। कारण कुछ भी हो, काका उनके वाक्-चातुर्यसे बिलकुल भी विचलित-से नहीं दीख पड़े। मुझे यह बात बहुत खटकी। मैं जीसे चाहती थी कि काकाके साथ उनकी घनिष्ठता बढ़े और मेरी ही तरह काका भी उनके प्रति आकृष्ट हों। पर इसके कोई चिह्न नहीं दिखलाई दिए।

उस दिन कॉलेजमें छुट्टी थी। दोपहरके समय काका अपने कमरेमें अकेले बैठकर कुछ अखबारोंको मेज़पर रखकर शायद कोई देशहित-संबंधी लेख लिख रहे थे। मैं उनकी एकाग्रचिंतामें विघ्न डालनेके लिए बिना इत्तिलाके भीतर घुस गई।

काकाने पूछा —" क्या काम है ? "

मैंने कहा—" काम कोई नहीं। यों ही अख़बार पढ़ने आई हूँ।"

बोले—" अख़बार ले जाओ। अपने कमरेमें पढ़ो।"

मैं झूठ बोल गई थी। असलमें मैं अख़बार पढ़ने नहीं, पर काका-के साथ व्यर्थकी बकबाद करके अपना दिल बहलाने आई थी।

मैंने उनकी बातपर ध्यान न देकर कहा—" क्या लिख रहे हो, काका ? "

बोले—" एक ज़रूरी लेख। इसमें बहुत-से नेताओंके दस्तखत होंगे। ' मेनीफ़ेस्टो ' के रूपमें यह छपेगा !"

" किस विषयमें है ? "

काकाने आधा लिखा हुआ वह लेख मेरी तरफ़को खिसकाकर कहा—" इसे ज़ोर से पढ़ो। कोई ग़लती रह गई हो तो सुधार लेंगे।"

मैं उस अँगरेज़ी लेखको पढ़ने लगी। इतनेमें नौकरने आकर कहा—"दो आदमी मिलना चाहते हैं।"

दो आदमियोंके लिये बैठकके कमरेमें जाना फिजूल समझकर काकाने उन्हें उसी कमरेमें लिवा लानेका हुक्म दे दिया।

चकित होकर मैंने देखा कि मेरे मनोवांछित वही दो मित्र हैं। मैंने विस्मय-भरी दृष्टीसे दोनोंकी ओर ताका। उन दोनोंने भी मृदु-मंद मुसकानसे मेरी ओर ताककर शायद यह प्रकट किया कि मेरे प्रति वे लोग उदासीन नहीं हैं। काकाने रूखी हँसी हँसकर दोनोंका अभिवादन किया।

पहले प्रोफ़ेसर किशोरीमोहन बोले—"माफ़ कीजिए, हमारे आनेसे आपके काममें विघ्न पड़ गया।"

काकाने पूर्ववत् रुखाईके साथ हँसकर कहा—"नहीं, कोई ऐसा विघ्न नहीं हुआ।"

अपनी झेंप प्रोफ़ेसर साहबने शायद पहले ही मिटा लेनी चाही। इसलिये काकाके विना कुछ पूछे ही बोले—"हम लोगोंका कोई ऐसा ख़ास काम तो था नहीं। यों ही आपके दर्शनार्थ चले आए।"

न मालूम क्यों, मैंने उसी दम यह कल्पना कर ली कि काका मन-ही-मन व्यंगके तौरपर कहेंगे—"बड़ी कृपा की।" कह नहीं सकती कि वास्तवमें उन्होंने मनमें क्या सोचा। पर वह विना कुछ उत्तर दिए उसी रुखाईके साथ हँसते रहे। मुझे उनकी रुखाई बहुत खटक रही थी।

कुछ देर तक सब चुप रहे और कमरेमें सन्नाटा छा गया। यह सन्नाटा बड़ा अशोभन जान पड़ा। मैं अच्छी तरहसे जानती थी कि काका यदि चाहते तो विना किसी चेष्टा या कष्टके इस अनिच्छित और

अनुपयुक्त निस्तब्धताको भंग करके कोई भी रोचक चर्चा छेड़ सकते थे। पर वह जान-बूझकर चुप थे और शायद दो मित्रोंकी घबराहट और असमंजस-भाव देखकर तमाशेका आनंद लूट रहे थे। मुझे दोनों मित्रोंपर भी क्रोध आया और काकाके ऊपर भी। मित्रद्वयपर इसलिये कि आज अचानक उनकी वाक्शक्तिकी चपलता बिलकुल तिरोहित हो गई थी। मैंने सोचा कि काकाके सामने जिन व्यक्तियोंकी ज़बान ही बंद हो जाती है वे उनसे मिलनेके अधिकारी ही नहीं हैं। काकाकी निष्ठुर आमोद-प्रियतापर क्रोध आया।

काकाके स्वभावसे दोनों मित्र भली भाँति परिचित नहीं थे। उन्हें ख़बर नहीं थी कि सारे देशमें उनकी धाक यों ही नहीं जमी है। उनकी हठकारिता, व्यंगप्रियता, बुद्धिकी तीक्ष्णता, तेजस्विता और सिद्धांत-दृढ़ताके कारण ही उनके नेतृत्वकी इतनी प्रतिष्ठा है। अपने ओछे स्वभाव और छिछले ज्ञानकी चपलतासे लँहगा-मजलिसमें डींग मारनेवाले ये दो वीरवर शायद समझे बैठे थे कि काकापर भी अपने "व्यक्तित्व" की धौंस जमा सकेंगे। हाय काका! मानव-चरित्रसे परिचित होनेके कारण तुम पहले ही इन लोगोंकी पोल पहचान गए थे।

९

पाँच मिनिट तक सन्नाटा रहा होगा। पर इतना ही समय एक युगके बराबर बीता। संकोच, घृणा और ग्लानिके मिश्रित भावसे मेरी पीठकी रीढ़से होकर काँटे चुभनेकी-सी हलकी वेदना और मैलेरिया बुखारकी-सी कँपकँपी दौड़ गई। बातें बनानेमें डाक्टर कन्हैया-लाल दोनोंमें ज्यादा होशियार थे। दोनोंमें अधिक रूपवान भी वही थे। उनके रूपमें सबसे अधिक विशेषता उनकी आँखों और मूँछोंमें थी।

उनकी लंबी-लंबी, बड़ी-बड़ी आँखोंकी चितवनमें एक ऐसा नशा–सा रहता था जिसका वर्णनमें ठीक तरहसे नहीं कर सकती। स्वामी विवेकानंदको मैंने कभी नहीं देखा। मेरे पैदा होनेके समय वह इस संसारमें थे या नहीं, यह भी मुझे ठीक मालूम नहीं। पर उनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंके चित्रोंका एलबम मैंने अवश्य देखा है। परिणत युवावस्थामें और उसके बाद उनकी आँखोंमें जो एक नशीला उद्दीप्त भाव प्रतिक्षण झलका करता होगा उसी किसमकी झाँई डाक्टर कन्हैयालालकी आँखोंमें भी मैंने पाई। मुझे यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता था कि आचार–विचारमें स्वामी विवेकानंदके पैरोंकी धूल झाड़नेके योग्य न होनेपर भी यह अद्भुत सादृश्य कैसा ! उनकी मूँछोंमें और भी अधिक विशेषता थी। जर्मनीके भूतपूर्व सम्राट्, पुरुष-सिंह क़ैसर विल्हेल्मकी शेरबबरकी-सी मूँछें जगत्-विख्यात हैं। जिन लोगोंने क़ैसरकी पक्षपात-रहित जीवनी पढ़ी है और उनका चित्र देखा है, वे जानते हैं कि इन मूँछोंके रौबका कैसा महत्व है। डाक्टर साहबकी बड़ी-बड़ी, घनी-घनी, काली-काली, सिरोंपर ऊपरकी तरफ़को मुड़ी हुई मूँछोंमें भी वही रौब था। पर यह होनेपर भी क़ैसरके स्वभाव और चरितका भीतरी सादृश्य डाक्टर साहबमें बिलकुल भी नहीं पाया जा सकता था। प्रकृतिकी इस अद्भुत ख़ामख़याली की धोखेबाजीसे मुझे पीछे बहुत कुछ शिक्षा मिली थी, इसमें संदेह नहीं। पर उस समय तो मैं इसे देखकर चकरा गई थी। हाय! नेपोलियनने भी अपनी ज़नानी सूरतसे संसारको छला था। उनकी सूरत देखकर कौन कह सकता था कि यह दुबला-पतला, नपुंसकके समान रूपवाला व्यक्ति विश्व-विजय करनेके योग्य है! डाक्टर साहबका बाह्य रूप देखकर भी कोई यह नहीं कह सकता था कि इस सिंहके समान दर्शनीय पुरुषके भीतर नपुंसकोचित भाव-छिपे होंगे।

कुछ भी हो, वह अखंड नीरवता पहले कन्हैयालालने ही भंग की। वह बोले—"आज मेरे पास एक देवीजी आई थीं। वह अपने इलाजके लिये आई थीं, पर उनसे कई और भी बातें हुई। उन्होंने एक यह नया विचार प्रकट किया कि ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटीके आगामी अधिवेशनमें यह प्रस्ताव पेश किया जाय कि हिंदोस्तान-भरकी सब वेश्याओंको कांग्रेसकी सदस्या बनानेके लिये देश-भरमें प्रचार-कार्य होना चाहिए। उन्होंने सुझाया है कि वेश्याओंमें सार्वजनिक जीवनकी वृत्ति जागरित होनेसे उनका पतित जीवन भी सुधर सकेगा और देशको भी सहायता मिलेगी। 'फ़ीमेल इमेंसिपेशन' की हवा जितनी जल्दी वेश्याओंमें फैल सकती है उतनी घर-गिरस्ती स्त्रियोंमें नहीं। मेरे विचारमें भी वेश्याओंके सुधारके आंदोलनका आरंभ इसी ढंगसे होना चाहिए। यह तरीका 'प्रेक्टिकेबल' भी है।"

मैं डाक्टर साहबकी बातें भी सुन रही थी, और बीच-बीचमें उत्सुकता-पूर्वक काकाके चेहरेके भावोंपर भी ध्यान देती जाती थी। उनके मुखमंडलमें व्यंगकी चिर-परिचित हँसी धीरे-धीरे स्फुरित होती जाती थी। अंतको वह हँसी चमकती हुई तलवारकी तरह निष्ठुरतापूर्वक झलक उठी।

वह बोले-" जी हाँ, इसमें क्या शक! आपकी बात बिलकुल सही है। सुधार हो तो वेश्याओंका हो! वेश्या-सुधारके बिना देशोद्धारका लुत्फ़ ही जाता रहता है। इसलिये आजकलके 'डॉन क्विक्ज़ोट'-संप्रदायकी प्रवृत्ति ही इस ओर है। 'पतित बहनें', 'फ़ालन सिस्टर्स', 'अभागिनी देवियाँ' आदि कानोंको ठंढक पहुँचानेवाले नामोंसे वेश्याओंके प्रति समवेदना प्रकट की जा रही है। यह देशके कल्याणके ही चिह्न हैं, इसमें संदेह ही किस बातका! इधर घरकी औरतें जूतोंसे ठुकराई जा

रही हैं, भगवानकी इस आनंदमयी सृष्टिमें उनकी कोई सत्ता ही नहीं मानी जाती। भाग्यके परिहाससे हमारे देशमें भी अब यह बात देखी जाती है कि पुरुषोंके राजनीतिक जीवनका ढकोसला ही ईश्वर और प्रकृतिके आदर्शके अनुकूल समझा जाने लगा है और स्त्रियोंकी घर–गिरस्तीका मंगलमय जीवन—जिसके कारण ही इस दुःखमय सृष्टिका कुछ अर्थ हो सकता है—अत्यंत तुच्छ, अकिंचित्कर, बेकार और 'सुपरफ्लुअस' समझा गया है। धीरे-धीरे हमारे समाजमें यह धारणा बद्धमूल होती जाती है कि सार्वजनिक जीवन ही स्त्रियोंकी उन्नतिका मूल है, इस जीवनके विना स्त्रियोंका अस्तित्व ही अर्थ-रहित है। रात-दिन सास-ससुर, पति-पुत्र, माता-पिता और भाई-बहनकी निष्काम सेवामें रत रहकर हमारे गाँवोंकी अशिक्षिता स्त्रियाँ जीवन-चक्रमें अपनी इच्छासे पिसती जाती हैं और कर्मके कोल्हूमें अपने हृदयोंको पेरकर उनका तेल निकालनेमें लगी हैं,—इस सुदुर्लभ और अत्यंत उन्नत आत्म-त्यागकी महत्तापर कोई ध्यान देना नहीं चाहता। आत्म-त्यागकी महत्ता अब केवल सभा-समिति-योंमें व्याख्यान देने और कौंसिलोंका श्राद्ध करनेमें ही रह गई है।"

काका अम्माँके राजनीतिक जीवनसे संभवतः यथेष्ट शिक्षा पा चुके थे। गृहस्थ-संबंधी कर्मोंकी देख-रेख और संतानके लालन-पालनसे विमुख होकर चिंताहीन, और उत्तरदायित्व-रहित सार्वजनिक जीवनकी वाहवाही लूटनेके लिये कितना "त्याग" स्वीकार करना पड़ता है, यह बात वह भली भाँति जान गए थे। पर कुछ भी हो, उनके मुँहसे इस प्रकारके उत्तरकी प्रत्याशा कोई भी नहीं कर सकता था। जो व्यक्ति स्वयं राजनी-तिक नेताओंका अग्रणी हो, जिसकी स्त्री राजनीतिक क्षेत्रमें विशेष ख्याति प्राप्त कर चुकी हो, जिसकी लड़कियाँ भी नवीन शिक्षाका आलोक प्राप्त करनेमें लगी हों, जिसका भूतपूर्व जीवन विलासिताके लिये बदनाम हो,

उस व्यक्तिके मुँहसे वेश्यासुधार और "स्त्रियोंके अधिकार" के विरुद्ध बातें सुनकर किसे आश्चर्य नहीं होगा! डाक्टर कन्हैयालाल सन्न रह गए। प्रोफ़ेसर साहबका भी यही हाल था। पर सबसे अधिक आश्चर्य स्वयं मुझे हो रहा था। मै अब तक काकाकी कुर्सीके पिछे खड़ी थी। काकाकी बातोंसे कौतूहल बढ़नेके कारण एक कुर्सी पकड़कर उनके बगलमें बैठ गई।

१०

डाक्टर कन्हैयालाल किशोरीमोहनकी तरह सहजमें झेंप जानेवाले आदमी नहीं थे। बोले—"तो आप क्या यह चाहते हैं कि स्त्रियाँ अनंतकाल तक अज्ञताके अंधकारमें डूबी रहें और अंधभावसे पुरुषोंकी गुलामी करती रहें?"

काकाने चिढ़कर कहा—"पुरुषोंकी गुलामी! आप क्या यह समझते हैं कि हमारी अशिक्षिता स्त्रियाँ नासमझीके कारण पुरुषोंकी सेवामें लगी हैं? देश-भरमें यही भारी भ्रम फैला हुआ है। हम लोगोंको यह ख़बर नहीं है कि जानबूझकर, अपने हृदयके अपरिमित स्नेहकी अविरल धाराको बद्ध न रख सकनेके कारण, हमारी स्त्रियाँ अपनी इच्छासे अपनेको बंधनमें जकड़कर गीताके निष्काम धर्मका पालन कर रही हैं। पुरुषोंका ख्याल है कि स्त्रियाँ उनके दबावसे दबी हुई हैं। यह बात किसीके ध्यानमें नहीं आ रही है कि अगर स्त्रियाँ इस बंधनसे मुक्त होना चाहें तो संसारकी कोई भी शक्ति उन्हें रोक नहीं सकती। पुरुषकी तुच्छ शक्तिका स्त्रियाँ सदा मन-ही-मन परिहास किया करती हैं?"

अपनी तीव्रतासे डाक्टर साहबकी वाक्‌-शक्ति को प्रतिहत करके काका कुछ देर तक आँखें फाड़-फाड़कर शून्य दृष्टिसे ताकते रहे। हम

लोग सब भयभीत होकर स्तब्ध भावसे बैठे रहे। कुछ देर तक चुप रहकर काका फिर बोले—" स्त्री–शिक्षा! स्त्री–शिक्षा! चारों ओरसे आजकल यही आवाज़ सुनाई देती है। पर स्त्री–शिक्षा क्या केवल युनिवर्सिटी और राजनीतिक क्षेत्रमें ही फलित होती है? स्त्रियोंकी आत्माओंमें स्थित उन्नत वृत्तियोंको सुसंस्कृत करनेसे ही उन्हें उपयुक्त शिक्षा प्राप्त हो सकती है। जिस नई राष्ट्रीय शिक्षाकी कल्पना मैं कर रहा हूँ उसमें 'स्त्रियोंके अधिकार' का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्रियोंके अधिकार भगवान्ने जन्मसे ही उन्हें दिए हैं। उन्हें कोई छीन नहीं सकता। वोटके अधिकारी होने, कौन्सिलोंमें प्रवेश करने, 'बार–प्रेक्टिस' करने और ऑनेररी मैजिस्ट्रेट होनेसे ही कुछ उनकी उन्नति नहीं हो जाती।"

कन्हैयालाल इसके उत्तरमें कुछ बोलना चाहते थे। काकाने उन्हें रोककर शांत स्वरमें कहा—" मारिए गोली! इन सब बातोंमें क्या रक्खा है! इस प्रकारके विवादोंका अंत नहीं होता। इधर कुछ दिनोंसे मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। पेटमें दर्द हुआ करता है, सिर भारी रहता है, तमाम बदनमें सुस्ती छाई रहती है, हर वक्त लेटे रहनेकी इच्छा होती है, किसी कामको जी नहीं करता। आप क्या इसका कोई कारण बतला सकते हैं?"

विषयके परिवर्तनसे कन्हैयालालने अपनेको अपमानित हुआ समझा, यह बात मैं स्पष्ट देख रही थी। फिर भी गुस्सेको पीकर यथासंभव शांत होकर बोले—" कोई ख़ास बीमारी आपको नहीं है। 'जेनेरल डेबीलीटी'के चिह्न दिखलाई देते हैं। मैं एक बार आपको अच्छी तरहसे 'साउंड' करूँगा। कब्जियतके लिये आप रातको 'लिक्विड पेरेफ़िन' पिया कीजिए। कमज़ोरीके लिये आपको किसी टॉनिकका सेवन करना

होगा। पर सब टॉनिकोंसे बेहतर आजकल एक नई दवाका आविष्कार हुआ है। मनुष्य–शरीरके क्षीण होनेके संबंधमें 'लेटेस्ट थिओरी' यह है कि जिन-जिन उपादानोंसे मानव–शरीर गठित होता है उनमें 'केल्सियम'का भाग विशेष रूपसे पाया जाता है। हड्डियाँ और पसलियाँ 'केल्सियम'से ही बनी हैं। इस केल्सियमके नष्ट होनेसे 'लॉस आफ़ इनर्जी'के चिह्न दिखलाई देते हैं। अक्सर देखा जाता है कि जिस आदमीके दाँत ख़राब होते हैं वह बीमार रहता है। अधिकांश डाक्टरोंका यह ख्याल है कि दाँत साफ़ न करनेसे दाँत ख़राब होते हैं और उनकी ख़राबीसे आदमी बीमार हो जाता है। इसलिये दाँतोंकी सफ़ाईपर आजकल बहुत जोर दिया जाता है। पर मुझे यह बात बिलकुल ग़लत जान पड़ती है। असलमें दाँत साफ़ न करनेसे दाँत ख़राब नहीं होते बल्कि केल्सियमका सार-भाग नष्ट होनेसे ही वे ख़राब होते है। मैंने बहुतसे ऐसे लोगोंको देखा है जो रोज़-बरोज़ दाँत साफ़ करते हैं, टुथ-पेस्ट, टुथ पाउडार, नमक और तेलका लेप काममें लाते हैं, कभी पान नहीं चबाते, पर फिर भी उनके दाँत खराब रहते हैं। दाँतोंकी ख़राबीसे आदमी बीमार नहीं होता, पर दाँतोंकी ख़राबी बीमारीका एक लक्षण है। इस कारण 'केल्सियम'से प्रस्तुत किया गया एक नया रसायन आजकल शरीरकी दुर्बलताके लिये दिया जाने लगा है। इसका नाम है 'ट्राइकेलसीन'। मैं आपको इसीके सेवनका उपदेश दूँगा। भारतवर्षमें अभी इस दवाका विशेष प्रचार नहीं हुआ है, पर मैं इसकी परीक्षा कर चुका हूँ।"

काकाने उल्लसित होकर कहा—"इस थिओरीकी युक्ति मुझे जँचती है। यह बात बिलकुल नई और दिलचस्प है। 'रिकाल्सिफ़िकेशन' का जिक्र इधर मैंने राजूके मुँहसे भी सुना था, पर उसे इस संबंधमें अनाड़ी

समझकर मैंने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। मैं अवश्य 'ट्राइकल-सीन' का सेवन करूँगा।"

उत्सुकतापूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर ताककर डाक्टर साहब बोले—"अवश्य कीजिएगा। और केवल आप ही नहीं; (मेरी ओर इशारा करके) आपको भी इसका सेवन कराइए। इनका चेहरा बहुत जर्द दिखलाई देता है। इनका टेंपरेचर नॉर्मल रहता है या नहीं, यह बात मालूम करनी होगी। एक हफ्ते तक दिनमें तीन बार इनका टेंपरेचर जब लिया जाय तब मालूम पड़े। पहलेसे ही सावधान रहना ठीक होता है। इस उम्रमें स्त्रियोंको अक्सर 'टी. बी.' हो जाया करता है।"

चौंककर काकाने कहा—"ऐं! 'टी. बी.'! यह आप क्या कहते हैं!"

डाक्टर साहब मुस्कुराए। बोले—"अभी घबरानेकी कोई बात नहीं है। इन्हें शायद 'टी. बी.' होगा भी नहीं। पर सावधान रहनेमें कोई हानि नहीं है।"

"आपका क्या यह ख्याल है कि इसमें 'टी. बी.' की 'टेंडेंसी' पाई जाती है!"

"'टेंडेंसी' तो अवश्य है। पर 'ग्लेंड' अभी उपजे या नहीं, यह विना देखे नहीं कहा जा सकता।"

मैं साफ़ देख रही थी कि काकाका चेहरा स्याह होता जाता था। इस पापिनीको वह प्राणोंसे भी अधिक चाहते थे। अनिश्चित आशंकासे वह घबरा उठे। पर मेरा हृदय आनंदकी पुलकित धारामें हिलोरें ले रहा था। डाक्टर साहब नाना कर्मों और नाना चिंताओंमें व्यस्त रहनेपर भी मेरे प्रति उदासीन नहीं हैं, इस विचारसे मैं फूली नहीं समाती थी।

मुझे 'टी. बी.' हो गया है या लकवा मार गया है, इस बातकी मुझे तनिक भी चिंता नहीं थी।

इस समय तक प्रोफ़ेसर साहबकी घिग्घी बँधी हुई थी। अकस्मात् वह बोले—"पर साहब, देखेगा कौन? इस कठिन रोगकी जाँचके संबंधमें लेडी डाक्टरोंका विश्वास नहीं किया जा सकता। डाक्टर कन्हैया-लाल इस संबंधमें 'स्पेशियालिस्ट' हैं, संदेह नहीं। पर मर्दोंका स्त्रियोंको 'साउंड' करना भद्दा जान पड़ता है और समाजकी आँखोंमें खटकता है। मैं तो कोई हानि नहीं देखता, पर—"

काकाने एक बार मेरी ओर ताका और इस बातका विना कोई उत्तर दिए चुप हो रहे।

११

मेरी रग-रग में नशा समा गया था। डाक्टर साहब जब अपने मित्रके साथ वापस चले गए तो मैं अलसाती, झूमती और बल खाती हुई अपने कमरेमें जाकर पलँगपर लेट गई। आज न जाने कितने दिनोंके बाद मेरे हृदयमें चैतन्य और मूर्च्छाकी पारस्परिक प्रीति और आँखमिचौनीका खेल चलने लगा था! डाक्टर साहबका वह बुद्धिसे प्रदीप्त, सौंदर्यसे उज्ज्वल, तेज-संपन्न मुखमंडल अपनी मोहनी स्मृतिसे बार-बार मुझे जीवित और मृत कर रहा था। कुसुम-कोमल, रेशम-सज्जित, एसेंस-सुवासित, विहग-पक्षोंसे निर्मित शय्याकी सुकुमार कोमलतामें मैं मक्खनकी तरह मिलकर पिघली जाती थी। दूसरे कमरेसे पियानोकी उत्सव-मय ध्वनि कर्ण-कुहरोंसे अंतस्तलमें प्रवेश करके लंदन और पैरिसके उल्लसित जीवनकी चंचलतासे हृदयको तरंगित कर रही थी। राजू शायद पासमें कोई काम न होनेसे

बिना किसी उद्देश्यके निर्विकार भावसे एक विलायती रागिणी बजा रहा था। निर्विकार भावसे इसलिये कहती हूँ कि उसकी प्रकृतिका व्यक्ति विलायती संगीतके उल्लास-विह्वल रससे कभी उत्तेजित नहीं हो सकता। विजन विश्वके विभीषिकामय विषादसे ही उसे प्रेरणा मिला करती थी। पर मादमाज़ेल पावलोवनाके शिष्यत्वमें हम दोनोंने विलायती संगीतकी शिक्षा भी पाई थी और रज्जन इस विद्यामें भी मुझसे बहुत आगे बढ़ गया था। इस कारण कभी-कभी वह बेठोफ़ेनके जगत्-प्रसिद्ध 'सोनाटा' बजा लिया करता था। पर उसने मुझसे कहा था कि पाश्चात्य संगीतसे उसकी आत्मा तृप्त नहीं होती।

और मैं? मैं रह-रहकर इस आनंदमय संगीतकी तरंगोंसे कंपित होती जाती थी। कॉलेजकी लड़कियोंके गांभीर्य-हीन हास-विलाससे उकताकर, घरके विषादमय और वैचित्र्यहीन जीवनसे घबराकर मैं इस अनंत सृष्टिमें अपनेको अकेली, असहाय, निःसंगिनी और उपेक्षिता समझ रही थी। आज राजूका यह संगीत मुझसे कहने लगा—"इस विपुल जीवनमें तुम्हारी भी सार्थकता है—तुम भी एक दिन संसार-भरके मुग्ध पुजारियोंकी पूजा पाकर नारीका सौन्दर्य-विभासित यौवनोन्मत्त जीवन सार्थक करोगी। एक दिन आवेगा जब समस्त संसारका आनन्दमय उत्सव केवल तुम्हारे ही चरणोंमें हृदयांजलि देनेके लिये मनाया जायगा।"

कहाँ गई 'टी. बी.' की चिन्ता, कहाँ गया 'केल्सियम' पर डाक्टर साहबका मंतव्य! अनंत जीवन और अनंत यौवनके भावसे मेरी नाड़ियाँ स्फुरित होने लगीं। मैं जाग्रतावस्थामें ही स्वप्न देखने लगी। मैं अनुभव करने लगी कि डाक्टर साहब मुझे लेकर देश-विदेश भ्रमण करने निकले हैं। असंख्य पुरुषोंको रूप-मुग्ध करके मैं उनकी बातोंसे, आँखोंसे, इंगितोंसे उनकी प्रशंसा लूट रही हूँ, पर प्यार सिर्फ़ डाक्टर साहबको ही

कर रही हूँ। डाक्टर साहब मेरे ही लिये डाक्टरी कर रहे हैं, मेरी ही चिन्तामें दिन बिता रहे हैं, मेरी ही रक्षाका व्रत उन्होंने लिया है। मुझे संसारमें किसीका डर नहीं है, क्योंकि मैं एक तेजस्वी पुरुषकी छत्रच्छायामें महारानीकी तरह आसीन हूँ।

यह जाग्रत स्वप्न देखते-देखते जब मैं मोहाच्छन्न हो गई तो अवसाद और क्लान्तिसे शक्तिहीन होकर यह कल्पना करने लगी कि यदि सचमुच मुझे कोई रोग हो जाता और डाक्टर कन्हैयालाल मेरा इलाज करते तो कैसा अच्छा होता!

फिर सोचने लगी—"अच्छा, सचमुच क्या मेरा रूप पुरुषोंको मोहित करनेके योग्य है? क्या कन्हैयालाल सचमुच मुझे चाहते हैं? क्या मेरा सुस्त चेहरा देखकर सचमुच उन्हें दुःख हुआ था और उनके कलेजेमें चोट पहुँची थी?"

इसके बाद फिर मेरा मन उनका चित्र अंकित करके उनकी रूप-सुधा, उनकी सरस आँखोंके मद-विह्वल भावकी मधुरता पान करने लगा। इसके साथ ही प्रोफ़ेसर किशोरीमोहनकी मूर्त्ति भी मेरे स्मृति-पटलमें उदित हो रही थी। मैंने सोचा—"दोनोंमेंसे अधिक रूपवान् कौन है? कन्हैयालाल ही मुझे जँचते हैं। किशोरीमोहन भी देखनेमें सुंदर हैं, इसमें संदेह नहीं। पर डाक्टर कन्हैयालालके मुखका-सा तेज उनमें कहाँ पाया जाता है! किशोरीमोहन मेरे रूपके भक्त हैं—ऐसे भक्तोंकी मुझे आवश्यकता है। पर डाक्टर साहबको ही मैं अपना हृदय अर्पित करूँगी।"

भगवानकी कृपासे पुरुष अपनी पूरी शक्तिसे परिचित नहीं है। स्त्री-हृदयको वह कैसे भयंकर तूफ़ानके ताड़नसे आंदोलित कर सकता है, इस बातसे वह अनभिज्ञ है। अच्छा ही है। नहीं तो संसार-भरमें आज स्त्री-जातिपर जैसा विकट अत्याचार हो रहा है उसकी मात्रा दूनी बढ़

जाती। पुरुषको इस बातपर विश्वास नहीं है कि नारीके हृदयके ऊपर उसकी शक्ति कोई काम कर सकती है। इस कारण अपनेको नारी-हृदयका अनधिकारी समझकर वह उसकी पार्थिव सत्ताके ऊपर अपना संपूर्ण बल आरोपित करता है। हाय मूढ़! यदि नारीका हृदय तुम्हारे पुरुषत्वकी शक्तिसे चकनाचूर न हुआ होता, तो विश्वकी प्रबलतम शक्तिको काममें लानेपर भी तुम स्त्री-जातिको दासत्वकी शृंखलामें न बाँध सकते। अपने हृदयकी विवशताके कारण वह स्वयं लाचार है। अन्यथा उसकी प्रलयंकरी काली-मूर्त्तिकी विकरालता और रण-चंडीके समान उन्मत्त भीषणतासे सारी सृष्टिका ही लोप कभी हो गया होता।

१२

पर यह सब होनेपर भी कौन मूर्ख इस बातका प्रचार कर गया है कि स्त्री-जाति वीर पुरुषको भजती है? पुरुषकी मनोहरतासे स्त्री मंत्र-विह्वल-सी रहती है। उसका देव-विनिंदक, मदन-मोहन रूप देखकर वह मोहाच्छन्न हो जाती है, और यह बात सोचनेका अवकाश ही उसे नहीं मिलता कि उसका मनोवांछित पुरुष वीर है या नपुंसक। जिस समय ग्रीस देशमें वीरताकी सच्ची पूजा होती थी उस समय भी विश्व-विमोहिनी हेलेनने अपने ऊपर मुग्ध समस्त वीरोंकी अवज्ञा करके, नपुंसक पैरिसके रूपपर मुग्ध होकर अपने स्वामीको छोड़कर ग्रीक-जातिका विनाश घटित किया था। किंग लियरकी पितृ-द्वेषिणी लड़कियोंने जिस व्यक्तिको अपना हृदय समर्पित किया था उसकी नीचतासे सभी परिचित हैं। नैपोलियनने जब स्पेनको अपने अधिकारमें करनेकी चेष्टा की थी तो वहाँकी रानी उस समय सारा राज्य एक अत्यंत तुच्छ, छैले—छबीले, बाँके और रसिया 'सिपाही'को लुटानेमें लगी थी। अपने इस प्रेमिकको सेनासे

बरी करके उसने अपने राज-काजमें रख लिया था। फ्रांसके 'लुई' वंशकी रानियोंकी कहानी सभीको विदित है। और तो क्या, हमारे देशकी तापसी शकुंतला दुष्यंतके वीरत्वपर मुग्ध न होकर उनका रूप देखकर ही रीझ गई थी।

असल बात यह है कि रूपवान् पुरुषको देखकर नारी उसके प्रति कभी उदासीन नहीं रह सकती। मैं मानती हूँ कि उदासीन रहना अपने वशकी बात नहीं है। पर अपनी दुर्बलताके विरुद्ध हठ करनेके लिये स्त्रीके हृदयमें इच्छा ही नहीं उत्पन्न होती। पुरुषमें यह बात नहीं है। जो यथार्थ पुरुष होता है वह पहले तो अपने उन्नत आदर्शके प्रतिकूल स्त्री-को उसके मुखके भावसे ही पहचानकर दूसरी बार उसके प्रति आँख उठाकर भी नहीं देखता, फिर चाहे वह अप्सरासे भी अधिक रूपवती क्यों न हो। यदि किसी कारणसे वह ऐसी स्त्रीके रूपपर मुग्ध हो भी जाय, और मनको न रोक सके तो आंतरिक इच्छासे मनके विरुद्ध संग्राम करता है। पुरुषकी इस प्रवृत्तिका परिचय मुझे अपने भाईके ही चरित्र-से मिला है। राजूको अपने अल्प जीवनमें अपने आदर्शके अनुकूल कोई स्त्री मिली या नहीं, मैं कह नहीं सकती। पर मेरी सहपाठिनी और संगिनी जिन-जिन स्त्रियोंसे उसका परिचय हुआ उनके लिये उसके उन्नत हृदयमें आंतरिक घृणा उमड़ा करती थी, यह मैं अपनी आँखोंसे देख चुकी हूँ।

संसार-भरमें जितने भी महत्त्वपूर्ण धार्मिक आंदोलनोंसे मानव-जाति जागरित हुई है उन सबके मूलमें नारीके विरुद्ध पुरुषका विद्रोह है। चिरकालसे पुरुष नारीकी भावनाको हृदयसे उखाड़कर महत् तत्त्वमें लीन होनेकी चेष्टा करता आया है। नारीके त्यागसे ही उसके धर्मका आरंभ होता है। पर हाय हतभागिनी नारी! पुरुषकी चिंता और पतिकी

भक्ति ही तुम्हारा मूल धर्म है। पतिको त्यागनेसे इस विपुल जगत्में तुम्हारे लिये धर्माधर्म कुछ भी नहीं रह जाता। केवल शून्य ही शेष रहता है। पुरुषके विना तुम्हारी सत्ता ही नहीं है। पुरुष तुम्हारे फंदेसे बचकर निकल भागनेकी चेष्टामें है, पर तुम नाना चेष्टाओंमें उसे रिझाकर अपने प्रेमांचलसे जकड़नेमें लगी हो। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि तुम्हें अपने अबलापनपर गर्व करनेकी शिक्षा दी गई है, और इस कारण तुम्हारा हृदय भी दुर्बल हो गया है। जब तक नारी-जाति अपने करालिनी कालिकाके स्वरूपसे परिचित नहीं होगी तब तक उसका शरीर, उसका हृदय और उसकी आत्मा नीचता, दासत्व और पापपंकसे पतित होती जायगी।

हाय! आज नारी-जातिके प्रति मेरे हृदयमें क्यों इतना भयंकर आक्रोश वर्तमान है! न मालूम क्यों, मेरे हृदयमें यह विश्वास बद्धमूल हो गया है कि स्त्रीके सतीत्वकी कल्पना ही बिलकुल मिथ्या है। संसारमें कोई भी स्त्री सती हो सकती है, इस बातपर मुझे विश्वास ही नहीं होता। पुरुष-पाठक मेरी इस उक्तिसे भड़क उठेंगे, क्योंकि स्त्री-हृदयमें स्वजातिके प्रति जो ईर्ष्या वर्त्तमान रहती है उससे वे परिचित नहीं रहते। पर पाठिकाएँ मेरे अंतस्तलकी क्रोधाग्नि और प्रतिहिंसाके स्वरूपसे परिचित होकर अवश्य ही इस हतभागिनीके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करेंगी, मुझे यह पूरी आशा है।

हे मेरी सती-साध्वी माताओ और बहनो! अपने स्वर्गीय शांति-रसकी स्निग्धता बरसाकर इस पापिनीकी ज्वालाको शांत करो! अपने हृदयके सहज स्नेहसे आशीर्वाद देकर इस हतभागिनीको क्षमा करो। घोर पाप और असहनीय दुःखसे पीड़ित होनेके कारण मेरा हृदय आज गद्गद

संशय और अविश्वासके तिमिरसे आच्छन्न है। अपनी आत्माके उज्ज्वल, निष्कलुष, शुभ्र प्रकाशसे मेरा अंतःकरण प्रभासित कर दो।

पाठक उकताकर कहेंगे कि इस कहानीमें कैफ़ियत अधिक है और तथ्य कम। कैफ़ियतके विना मेरी कहानीका कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता, यह बात मैं लोगोंको कैसे समझाऊँ! कैफ़ियत ही मेरी कहानी है और कहानी कैफ़ियत।

१३

एक दिन काकाने किसी कारणसे अपने मित्रोंको सहभोजका निमंत्रण दिया। सबके पास निमंत्रणपत्र भेजे गए, पर पूर्वोलिखित दो मित्रोंको वह भूल गए। बहुत संभव है, जानबूझकर उनके पास उन्होंने न्योता नहीं भेजा। पर मैं न रह सकी। मैंने काकाको याद दिलाई। कहा—" डाक्टर कन्हैयालाल और प्रोफ़ेसर किशोरीमोहनके लिये न्योता नहीं भेजा गया। उन लोगोंको तुम क्यों भूल जाते हो?" मेरे भीतरका क्रोध बहुत दबाने पर भी शायद बाहरको कुछ फूट निकला था। काकाने तीव्र बुद्धिमत्तासे पूर्ण अपनी दो उज्ज्वल आँखोंसे स्नेहकी स्निग्ध धारा बरसाकर मेरी ओर ताका। बोले—" ओह! भूल हो गई है। तुमने खूब याद दिलाई। अभी भेजे देता हूँ।" मेरे भावी सर्वनाशकी आशंका करते हुए भी वह मेरा अनुरोध न टाल सके।

भोजके दिन नियत समयपर एक-एक दो-दो करके मित्रगण पधारने लगे। मैं बड़ी उत्सुकतासे डाक्टर साहब और प्रोफ़ेसर साहबकी बाट जोह रही थी। अंतको अपना सजीला और गठीला बदन, तमतमाता हुआ चेहरा, चमकती हुई आँखें और रौबदार मूँछें लेकर डाक्टर साहब किशोरीमोहनके साथ आ उपस्थित हुए। युगल मित्रोंकी

यह जोड़ी अविच्छेद्य थी। जिस प्रकार नैय्यायिकोंने यह स्वयंसिद्धि प्रचारित की है कि धूँएको देखते ही आगके अस्तित्वकी कल्पना कर लेनी चाहिए, उसी प्रकार इन दो मित्रोंमेंसे एकको देखते ही यह कहा जा सकता था कि दूसरे महाशय भी अवश्य ही इनके साथ होंगे। आज प्रोफ़ेसर किशोरीमोहनके मुखपर भी विशेष तेज झलक रहा था। दोनों मित्र अश्विनीकुमारोंकी तरह अपनी प्रभा और नवीनतासे स्वयं दीप्त होकर सारी सभाको उज्ज्वल कर रहे थे। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि संसारमें जितने भी उत्सव नित्यप्रति मनाए जा रहे हैं वे सब केवल इन्हीं दो मित्रोंके शुभागमनके लिये।

सारी सभाकी आँखें इसी नवीन जोड़ीकी ओर लगी हुई थीं। दोनोंके मुखमंडलके भावोंमें, पहनावेमें, चालकी गतिमें और बोलनेमें एक ऐसी अद्भुत मौलिकता थी जिसकी उपेक्षा किसी तरह नहीं की जा सकती थी। महिलाओंकी मुग्धताके संबंधमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, परन्तु पुरुष भी उनकी विशेषतासे विमूढ़ हो रहे थे।

दोनोंको मेरे पास बिठाकर काकाने व्यंग-भरी मुसकानके साथ कहा—" स्मृति-शक्तिकी दुर्बलताके कारण मैं तो आप लोगोंको न्योता देना भूल ही गया था। पर लज्जा हमारी बड़ी समझदार लड़की है। उसीके याद दिलानेपर मैंने आप लोगोंको बुलाया है, इसलिये उसीके साथ आप लोगोंको बैठना होगा।" यह कहकर उसी चिर-परिचित व्यंगकी मुस्कराहटसे मेरी ओर ताककर मेरा मर्म बिद्ध करके वह चले गए और अन्यान्य मित्रोंका अभिवादन करने लगे। लाज और संकोचकी वेदनासे मेरे सारे शरीरमें काँटे चुभनेकी सुरसुराहट होने लगी। पर वे दोनों विशेष रूपसे उल्लसित हो उठे।

प्रथम परिचयकी लज्जा कैसी भयंकर होती है, पाठिकाओंको यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। मेरा मुँह शायद बहुत लाल हो आया था और मैं पसीनेसे तर हो गई थी। डाक्टर कन्हैयालाल अपने सुदृढ़, सुंदर, पौरुष कंठसे बोले—"आपका नाम लज्जा रखकर आपके पिताजीने अपनी सुबुद्धिका ही परिचय दिया है। वैसे तो स्त्री-जाति लज्जाके लिये प्रसिद्ध ही है, पर सुशिक्षिता महिलाएँ भी इतनी लज्जावती हो सकती हैं, इसकी मुझे खबर नहीं थी।"

डाक्टर साहब आज प्रथम बार मेरे साथ बोले थे। अव्यक्त पुलकके आनंदसे मेरे रोएँ खड़े हो गए। संकोचको यथाशक्ति दबानेकी चेष्टा करके मधुर लाजकी विलासितापूर्ण हँसी हँसकर मैं बोली—"तो क्या आप लज्जाको एक दुर्गुण समझते हैं?"

यहाँपर प्रोफ़ेसर किशोरीमोहन बोल उठे—"अगर नहीं समझते तो समझना चाहिए। मैं किसी तरह लज्जाको गुण नहीं बतला सकता। हमारे देशकी स्त्रियाँ इतने नीचे इसीलिये गिरी हैं कि उनमें बात–बातमें जड़ता और संकोच पाया जाता है। इस घृणित संकोचके कारण ही वे जनतामें अपनी सत्ता प्रतिष्ठित करनेमें असमर्थ हैं। इस संकोचके कारण ही वे पर्देमें सड़कर पुरुषोंकी गुलाम बनी हुई हैं।"

डाक्टर कन्हैयालालने कहा—"माफ़ कीजिए, प्रोफ़ेसर साहब! मैं आपकी बातसे सहमत नहीं हूँ। लज्जा ही स्त्री-जातिका एकमात्र ऐसा गुण है जिसने पुरुषोंको बाँध रक्खा है। लज्जा बुरी नहीं है, पर आवश्यकतासे अधिक मात्रामें होनेसे ही इससे नुक़सान पहुँचता है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'–वाली चाणक्य-नीति मुझे बार-बार याद आती है।"

प्रथम लज्जाका बाँध टूटनेसे मैंने निर्लज्ज होकर मधुर मुस्कराहटके साथ नयन-बाणोंसे दोनों मित्रोंको वेधते हुए डाक्टर साहबसे कहा—

"कितनी लज्जा आवश्यक होती है, और कितनी आवश्यकतासे अधिक, इस बातका ठीक-ठीक हिसाब रखकर कैसे चला जा सकता है ? लज्जाको कम करना या बढ़ाना क्या अपने वशकी बात है ? आप तो डाक्टर हैं, आप तो जानते हैं कि स्नायुके विशेष विकारसे ही मनुष्यको लज्जा आ घेरती है। जिस व्यक्तिका स्नायु-चक्र अधिक सुकुमार होता है, वह लाख लज्जाको दबानेकी चेष्टा करने पर भी उसकी ललाईसे रँग जाता है। स्त्रियोंका स्नायु-चक्र सबसे अधिक सुकुमार होता है, इसलिये वे किसी प्रकार भी लज्जाको त्याग नहीं सकतीं। हाँ, अगर आप स्नायु-चक्रको अधिक पुष्ट और दृढ़ बनानेकी कोई दवा 'प्रेसक्राइब' कर सकते हैं तो दूसरी बात है।"

मेरी अंतिम बातसे प्रोफ़ेसर साहब ठठाकर हँस पड़े और डाक्टर कन्हैयालाल शायद आनंदकी उत्तेजनाके कारण तमतमा उठे।

प्रोफ़ेसर साहब बोले—"खूब ! यह आपने खूब कहा ! लज्जा जब एक स्नायविक विकार है, तो इसका डाक्टरी इलाज अवश्य होना चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि डाक्टर साहब इसकी दवा जानते हैं। पर इस मर्ज़के लिये कोई ऐसी दवा 'प्रेसक्राइब' नहीं की जा सकती जो चखने लायक़ हो। आपको शायद मालूम होगा कि आजकल विलायतमें हिप्नो-टिज़्म और मेस्मेरिज़्म द्वारा भी कई रोगोंका इलाज किया जा रहा है। डाक्टर साहब इन विद्याओंमें भी पारंगत हैं। आप बेमालूम कई रोगोंको दूर कर देते हैं। बहुत संभव है आपके ऊपर भी इन्होंने हिप्नोटिज़्मका उपयोग कर लिया हो, नहीं किया होगा तो शीघ्र ही करेंगे।"

प्रोफ़ेसर साहब शायद समझ गए थे कि डाक्टर साहबकी बातोंके जादूसे मेरी लज्जा तिरोहित हो गई है, इसी लिये व्यंगकी यह वर्षा कर रहे

थे। पर इसमें संदेह नहीं कि डाक्टर साहबकी आँखोंमें और उनकी बातोंमें एक ऐसी विशेषता थी, जो मनुष्यको बेबस मोह लेती थी। इसलिये नहीं कि उन्होंने हिप्नोटिज़मकी तुच्छ विद्याका अभ्यास किया हो। उनका यह जादू उनकी प्रकृतिके साथ जड़ित था।

१४

दो पुरुष-प्रशंसकोंकी मुग्ध दृष्टिसे पूजित होकर मैं अपनेको सारे संसारकी महारानी समझ रही थी। कोई दैन्य, कोई हीनता और कोई तुच्छता मैंने अपने भीतर नहीं पाई। मैं अच्छी तरह समझ रही थी कि हमारे बीचमें जो बातें इस समय हो रही हैं, वे अत्यंत तुच्छ और नाशवान् हैं। पर हमारे बीचसे होकर चुंबक-शक्तिकी जो अदृश्य धाराएँ तरंगित हो रही हैं वे चिरस्थायी और अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

डाक्टर साहब बोले—" हिप्नोटिज़म, मेस्मेरिज़म, मेग्नेटिज़म, ये सब विद्याएँ कोई विद्याएँ नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं कि विलायतमें 'मेडिकल सायंस' की तरह ये विद्याएँ भी पढ़ाई और प्रयोगोंद्वारा सिखाई जाती हैं; पर मनुष्यका यह ज्ञानाभिमान कैसा तुच्छ है! केवल पुस्तक और 'लेबोरेटरी' के भीतर बंद ज्ञान ही उसके लिये सब कुछ है। आत्मानुभवको वह कोई महत्त्व ही नहीं देता। मनुष्यकी शक्तिको जड़ बनाकर उसे बेबस अपने इशारोंपर नचाना, प्रकृतिको अपने वशमें कर लेना, क्या एक साधारण खेल है कि जो पुस्तकगत सिद्धांतोंको रटनेसे ही अभ्यस्त हो सके? हमारे देहाती भाई मुरादाबाद या मथुराके प्रेससे छपी हुई इंद्रजाल और तंत्र-मंत्रकी पुस्तकें पढ़कर 'हिप्नोटिस्ट' बनना चाहते हैं। वर्त्तमान 'हिप्नोटिक सायंस' की विलायती पुस्तकोंकी दौड़ इंद्रजालकी उन पुस्तकोंसे अधिक है, मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता।"

प्रोफ़ेसर किशोरीमोहन कुछ खीझकर बोले—" तो क्या आप ' हिप्नोटिज़म' को केवल एक शब्द-जाल समझते हैं ?"

" हरगिज़ नहीं। हिप्नोटिज़म शब्द जब कोषमें है, तब उसका कुछ–न–कुछ अर्थ अवश्य होना चाहिए। मैं ' हिप्नोटिज़म' को कोई बाहरी विद्या नहीं समझता जो पुस्तकोंके पढ़नेसे सीखी जा सके। मनुष्यकी भीतरी वृत्तियोंके विशेष विकाससे ही उसका संबंध है। महात्मा बुद्धने समस्त मानव-जातिको किस विद्याद्वारा मोहित किया था ? उन्होंने मद्रास प्रांतके अडयार पब्लिशिंग हाउससे प्रकाशित वशीकरण-योगकी पुस्तकोंका अध्ययन किया था या ट्रिङ्किनके पुस्तक-प्रकाशकोंका मेस्मेरिज़्म सीखा था ?"

मैं स्पष्ट देख रही थी कि डाक्टर कन्हैयालाल आज प्रारंभसे ही प्रोफ़ेसर साहबको परास्त करनेकी चेष्टामें थे और प्रोफ़ेसर साहब भी बीच–बीचमें अपनी व्यंगोक्तियोंसे उन्हें उत्तेजित करनेमें लगे थे। इसका कारण क्या था ? यह क्या प्रतियोगिताका विद्वेष था ? संभव है। कुछ भी हो, इससे मेरा आत्माभिमान अधिकाधिक बढ़ता जाता था।

प्रोफ़ेसर किशोरीमोहन बोले—" आपके विचारमें क्या महात्मा बुद्धके जमानेमें ' हिप्नोटिज़म' का प्रचार नहीं था ? यह आप कैसे कह सकते हैं ? ' हिप्नोटिज़म' नहीं तो हठयोग, राजयोग आदि नाना योग तो उस समय वर्त्तमान थे। ये हिप्नोटिज़मके ही अन्य रूप हैं। कौन कह सकता है कि बुद्धने इन योगोंका अनुशीलन नहीं किया था ?"

प्रोफ़ेसर साहबकी यह उक्ति शायद अत्यंत हास्यजनक थी। इसलिये डाक्टर साहब ठठाकर हँस पड़े। डाक्टर साहबकी विजय अब निर्विवाद थी। उनकी विकट हँसीसे किशोरीमोहनके चेहरेकी रंगत उड़ गई। वह परास्त होकर कभी कन्हैयालालका और कभी मेरा मुँह ताकते रह गए।

डाक्टर कन्हैयालालने प्रोफ़ेसर साहबके इस हास्यास्पद तर्कका उत्तर देना ही उचित न समझा। वह अपनी ही धुनमें कहते चले गए—"रमणी अपने रूपकी मोहनीसे सारे जगत्को अपने इशारोंपर नचा रही है। इस रूपके 'मेस्मेरिज़म'से पागल होकर पुरुष-समाज इस बातका ख्याल नहीं कर रहा है कि इस प्रबल आकर्षणके मूलमें स्त्रीका हृदय है जो चुंबक-शक्तिसे पूर्ण लोहेके चट्टानसे भी कठिन है। इस भीषण चट्टानकी ओर बेबस आकर्षित होकर उससे टकराकर पुरुष-हृदय चकनाचूर हो जानेकी इच्छा रखता है। स्त्रीके रूप और हृदयके इस आकर्षणका कारण क्या आप यह बतला सकते हैं कि उसने भी किसी योग-शास्त्रका अध्ययन या अभ्यास किया है?"

शैतानकी तरह अव्यक्त हँसी हँसकर डाक्टर कन्हैयालालने अपनी बात समाप्त की।

प्रोफ़ेसर साहबको निरुत्तर देखकर मैं अपने शरीर और मुखके सुंदर गठनका विलास पूर्ण मात्रामें व्यक्त करके डाक्टर कन्हैयालालसे बोली—"तो क्या आपका हृदय भी स्त्री-हृदयके चुंबक-चट्टानसे टकराकर चकनाचूर होनेको है?"

यह प्रश्न करते ही निरतिशय लज्जाके कारण मेरा मुँह खूनसे रँग गया और आँखें नीचेकी तरफ़ झुक गईं। प्रोफ़ेसर साहब इतने ज़ोरसे हँस पड़े कि सारी सभाकी उत्सुक आँखें हमारी ओर केंद्रित हो गईं। अपनी निर्लज्ज मूर्खतापर मैं बेतरह पछताने लगी। मेरा दिल ज़ोरोंसे धड़कने लगा और हाथ-पाँव बेबस काँपने लगे। किसी पुरुषसे ऐसा प्रश्न कभी कर सकूँगी, यह बात मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोची थी।

पर डाक्टर कन्हैयालालने स्थिर होकर मंद-मंद मुसकानसे और तीखी नज़रसे मेरी ओर ताका। उनकी उस तीक्ष्ण दृष्टिकी आँचसे मेरा हृदय

पुलकित होकर पिघलने लगा। उनकी आँखोंके विद्युत्-वर्षणसे मेरी आँखें चौंधिया गईं और मैं इच्छा होने पर भी एकटक उनकी ओर न ताक सकी। अधखुली आँखोंसे कभी ऊपरको उनकी ओर ताकती थी और फिर उसी दम नीचेको नज़र फिरा लेती थी। मैं लज्जासे मिट्टीमें गड़ी जाती थी, पर फिर भी मन-ही-मन यह अनुभव कर रही थी कि मेरी आँखोंकी मोहिनी इस समय दूनी बढ़ गई है।

अपनी दृष्टिकी तीक्ष्ण धारसे मेरा हृदय चीरकर, उसमेंसे न मालूम क्या गुप्त रहस्य निकालकर डाक्टर साहबने स्थिर भावसे पूछा—" आप क्या सचमुच यह बात जानना चाहती हैं ? "

इस समय भी उनकी आँखोंके कोनोंमें शैतानका वही निष्ठुर, अव्यक्त हास्य भरा था।

मैंने धीमे, काँपते हुए स्वरमें कहा—" यह आपका कैसा अनोखा प्रश्न है ! "

डाक्टर साहब बोले—" आपका प्रश्न अनोखा था या मेरा यह प्रश्न अनोखा है ? ख़ैर !—

फिर वही क्रूर, अव्यक्त, मंद हास्य ! मैं अफ़ीमके नशेसे झूमने लगी।

१५

भोज समाप्त होते ही मैं वहाँसे उठ गई और बिना किसीसे कुछ कहे-सुने बाहर चली आई। मैं अच्छी तरह समझ रही थी कि मेरा यह आचरण अनुचित और शिष्टाचारके विरुद्ध है; पर एक ऐसी अप्रिय भावनासे मेरा हृदय आलोड़ित हो रहा था जिससे मैं मुक्ति पाना चाहती थी। प्रेम-संभाषणके प्रथम सूत्रपातसे ही मेरे हृद-

यमें प्रेम-जनित तृप्ति उत्पन्न होने लगी थी । अपनेको धिक्कारकर, निर-पराध काकाको कोसकर मैं जी मसोसकर बाहर आई । बाहर राजू लीलाके साथ ' बेडमिंटन ' खेल रहा था । भीतर बड़े–बड़े नेता आए हुए थे, प्रांत–भरकी प्रसिद्ध महिलाएँ उपस्थित थीं, तरह–तरहकी दिलचस्प बातें छिड़ रही थीं, नए-नए और एक-से-एक बढ़कर फ़ैशनों-की प्रतियोगिता हो रही थी; पर राजू इन सब बातोंके प्रति बिलकुल उदासीन था । अर्थ और कामकी जलती हुई आगके बीचमें यह वैराग्यसे स्थिर मूर्त्तिमान धर्म न मालूम किस नक्षत्र-लोकसे आकर शांत भावसे विराज रहा था !

लीलाके उल्लासकी किलकारियोंसे सारा वायुमंडल गूँज रहा था, और राजू बड़े आनंदसे उसके निष्पाप जीवनकी प्राकृतिक उमंगका उपभोग कर रहा था । मुझे अपने इन दो भाई–बहनके ऊपर ईर्ष्या होने लगी । मैं एकटक दोनोंको ताकती रह गई । धीर–धीरे मेरी आँखोंसे अकारण आँसू उमड़ आए । आँखें पोंछकर मैं उन दोनोंके पास आकर खड़ी हो गई ।

लीला दौड़ती हुई मेरे पास आई और बड़े स्नेहसे मुस्कुराती हुई बोली—" दीदी, पहला ' गेम ' मैं हार गई हूँ, दूसरे ' गेम ' में भी भैया ही अब तक आगे बढ़े हैं । मेरे बदले तुम खेल दो । " मैं अन्य-मनस्क हो रही थी । चित्त चंचल था । पर लीलाका स्नेहानुरोध न टाल सकी । बोली—" अच्छा भैना, मैं खेल दूँगी । " उसके हाथसे रैकिट लेकर मैं खेलने लगी । राजू इस खेलमें बड़ा तेज़ था । इसलिये मैं भी हारती चली गई । मुझे भी हारते देखकर लीलाका मुँह फीका पड़ता जाता था । मैं मनमें कहने लगी—" हाय, प्यारी बहन ! अभी तुम

संसार-चक्रसे परिचित नहीं हो। अभी तुमने अपना हृदय नहीं पहचाना है। एक दिन प्रकृतिकी विकट अग्नि-परीक्षामें तुम्हारा यह हृदय भी जलेगा, तब तुम्हें माळूम होगा कि सारे जीवनको आलस्यजनित आनंदकी क्रीड़ामें बितानेकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंके लिये यह संसार नहीं है। जिन लड़कियोंको बचपनसे ही इस प्रकार जीवन बितानेकी शिक्षा दी जाती है, वे अंतकाल तक जल-जलकर, घुल-घुलकर अपने दिन बिताती हैं। जलनेके सिवा उनके कपालमें और कुछ लिखा नहीं होता।"

पर कर्म? स्त्री क्या कर्म कर सकती है! जब भगवानने लीलाको और मुझे अर्थ और कामसे पूर्ण, पार्थिव ऐश्वर्यसे संपन्न घरमें पैदा किया था, तो ऐसे घरमें क्या कर्म हमें करना था? कौनसा कर्त्तव्य मैं निभा सकती थी? निर्धन घरोंकी स्त्रियोंका कर्त्तव्य तो प्रकृतिने जन्मसे ही निर्दिष्ट कर दिया है—भाई-बहन और बाल-बच्चोंकी देख-रेख करना, चूल्हा जलाना, खाना बनाना, कूटना, पीसना, बर्तन मँाजना, अतिथि-अभ्यागत, माता-पिता, सास-ससुर पति और देवरोंकी सेवामें लगे रहना, इत्यादि सभी कर्मोंके भारसे वे दबी रहती हैं, और इसी प्रकारके निःस्वार्थ, निष्काम कर्ममें लगे रहनेमें ही उन्हें स्वर्गका आनंद मिलता है, और, संभव है, स्वर्गका फल भी प्राप्त होता होगा। पर हम दो बहनोंको इन सब पुण्य-कर्मोंमें निमग्न रहनेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता था? नौकर-चाकर, दास-दासी, धाई, मिसरानी और बावर्चियोंसे सारा घर भरा था। ज़मीन परसे एक तिनका उठानेका सौभाग्य भी हमें प्राप्त नहीं होता था। ऐसी हालतमें आलस्य-विलास और सुख-स्वप्नोंमें डूबे रहनेके अतिरिक्त और क्या किया जा सकता था? पर मैं अच्छी तरहसे जानती थी कि इस प्रकारके आलस्यजनित स्वप्नोंसे मेरा सारा जीवन मिट्टीमें मिला जा रहा है और इस कर्म-भूमिमें पैदा होने पर भी मैं विकराल

शून्यका ही ग्रास बनी हुई हूँ। कर्ममें निमग्न रहनेकी आंतरिक इच्छा होनेपर भी मैं लाचार थी। यदि मैं विवाहिता होती, तो मैं अपने लिये काम निकाल लेती। पर ऐसा भी नहीं था। पतिकी सेवा और संतानके लालनका कर्म अपने आपमें पूर्ण है। उसके होते हुए किसी बाहरी कर्मकी आवश्यकता नहीं रहती। पर मैं इससे भी वंचित थी। मेरी समस्या कैसी विकट थी! एक तरफ़ तो चढ़ती जवानीका जोश मेरी नसोंको उत्तेजित करके मुझे प्रचंड कर्मके लिये उकसा रहा था और दूसरी तरफ़ मैं अकर्मण्यताकी व्यर्थतासे क्षुब्ध हो रही थी।

मैं अच्छी तरहसे समझ रही हूँ कि लोग मेरी बातपर हँसेंगे। कहेंगे—"जब कर्म करनेकी उत्कट इच्छा तुम्हारे हृदयमें वर्त्तमान थी, तो तुमने देशहितका व्रत क्यों नहीं लिया? ऐसा करनेसे तुम्हारे लिये कर्मका अभाव न रहता। सभा-समितियोंमें व्याख्यान देकर, चरखेका प्रचारकर, गाँव-गाँवमें जाकर ग्रामीण स्त्रियोंकी राजनीतिक चेतना जागरितकर अपना कर्त्तव्य तुम निभातीं। यह कर्म ही सब कर्मोंसे श्रेष्ठ है और यह तुम्हारी ही प्रकृतिकी स्त्रियोंके योग्य है भी।"

हाय, दुनियाको इसकी क्या ख़बर कि यह कर्म तामसिकताका ही दूसरा रूप है! स्त्री-हृदयमें कर्मकी जो उत्कट वासना वर्त्तमान है, वह क्या इस पोपली 'कर्मबाज़ी' (इस प्रकारके विकृत कर्मवादका और क्या नाम दिया जा सकता है!) से कभी पूर्ण हो सकती है! सभा-समितियोंमें व्याख्यान देकर, उल्लसित जनताकी हर्षध्वनिसे पुलकित होकर, जयमाला गलेमें डालकर, राजनीतिक भोजसे तृप्त होकर, मोटरमें चढ़कर शहरकी परिक्रमा करके जुलूसके साथ उत्सुक भक्तवृंदको अपने दर्शन देकर क्या उपकार देशका और जनताका हो सकता है! और इस प्रकारके कर्ममें 'त्याग'की आवश्यकता ही क्या है?

ग्रामीण स्त्रियोंकी राजनीतिक चेतना ! इस अभागे देशमें 'स्त्री-जागरण'का आदर्श ही यही है ! अगर ईश्वरानुमोदित विपुल कर्मका मर्म इस जगतमें कोई समझ पाया है तो वह हमारे कंगाल देशकी कर्मक्लिष्ट ग्रामीण स्त्रियाँ। ऐसी स्त्रियोंको राजनीतिक अधिकारके लिये कौंसिलोंमें लड़नेकी शिक्षा देकर हमारे देशवासी किस महती उन्नतिकी आशा करते हैं ?

१६

खेलते-खेलते एक 'गेम' भी पूरा न हुआ होगा कि डाक्टर कन्हैयालाल अपनी वही भयंकर मुसकान लेकर 'बेडमिंटन' के कोर्टके पास आकर खड़े हो गए। इस समय वह अकेले थे, प्रोफ़ेसर किशोरीमोहन उनके साथ नहीं थे। अभी कुछ ही देर पहले उनका अपमान करके, उनके प्रति उपेक्षाका भाव दिखलाकर और अपनी अद्भुत, चंचल प्रकृतिका परिचय देकर मैं अचानक उनके पाससे उठकर चली आई थी। पर इस समय फिर उन्हें देखकर मैं अपने जीवनकी चिंता भूल गई, कर्म—अकर्म और कर्तव्य-अकर्तव्यकी भावना मेरे हृदयसे तिरोहित हो चली ! मैं केवल विमूढ़-सी होकर उनकी अनिर्वचनीय रूप-माधुरी अतृप्त हृदयसे पान करने लगी। मैं अनुभव करने लगी कि मेरा जीवन अभी व्यर्थ नहीं हुआ है,—अभी उसका प्रारंभ है और पुरुषके स्नेहसे पुलकित होकर उसे अभी आनंदके नाना रँगोंमें रँगना है। फिर एक बार अनंत यौवन और अनंत जीवनकी तरंग मेरे भीतर हिलोरें लेने लगी।

डाक्टर साहब आते ही उपदेश बघारने लगे। बोले—"यह क्या ! आपको शायद ख़बर नहीं कि आपके स्वास्थ्यके लिये इतना 'इग्ज़रशन'

भी बहुत खराब है। 'नर्वस डिजीज' में 'कंप्लीट रेस्ट' ही एक ऐसा इलाज है जिसका कुछ असर हो सकता है। आपको 'कांसर्वेशन आफ़ इनर्जी' का मूल्य समझना चाहिए।"

डाक्टर साहबसे मेरी बातें आज ही हुई थीं। पर इतने थोड़े समयके आलापसे ही उनकी धृष्टता इतनी अधिक बढ़ी देखकर मुझे आश्चर्य होना चाहिए था। पर कुछ नहीं हुआ। यह शायद इस लिये कि मुझे डाक्टर लोगोंके 'प्रिविलेज'—उनके विशेष अधिकार—का ख्याल हो आया। पर मैंने जब शंकित होकर राजूकी ओर ताका तो एक पलकमें ही उसके मुखका भाव देखकर मैं समझ गई कि डाक्टर कन्हैयालालके प्रति विद्वेषके भावसे उसका खून खौल रहा है। मैं घबरा गई। डाक्टर साहबको राजू ऐसी बुरी निगाहसे देख रहा था जैसे उसके जन्म-जन्मांतरका बैरी अनेक समयके बाद फिर उसके सामने आ खड़ा हुआ हो। मैं सिरसे पैर तक काँपने लगी। पर डाक्टर साहबकी बातका उत्तर दिए बिना न रह सकी।

मधुर मुसकानके साथ बोली—"सारे संसारके अनुभवी लोग तो यह उपदेश देते हैं कि शरीरको हिलाने-डुलाने और हर वक्त उससे काम लेते रहनेसे तंदुरस्ती बढ़ती है, पर आप यह अनोखी बात सुनाते हैं कि उसे बिलकुल आराम देना चाहिए।"

राजूके मुँहकी ओर ताककर डाक्टर साहबकी हँसी उनके होंठोंमें ही विलीन हो गई थी। फिर भी बड़ी मुश्किलसे अपनेको सँभालकर बनावटी हँसी दिखलाकर उन्होंने कहा—"'लेटेस्ट थिओरी' यही है।"

राजू अचानक खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह क्या सोचकर हँसा, कह नहीं सकती। पर उसकी हँसी और भी अधिक भयंकर थी। उसके

बाँए हाथमें 'शटलकॉक' था और दाहिने हाथमें रैकिट। 'शटलकॉक' को ऊपर उछालकर उसने उसपर ऐसे ज़ोरसे रैकिट चलाया कि कुछ देर तक वह आकाशमें दिखलाई भी न दिया। 'शटलकॉक' कहाँ गिरा, इस बातकी बिलकुल परवा न कर वह सीधा बरामदेकी तरफ़ आगे बढ़ा और डाक्टर साहबके पास आकर खड़ा हो गया। उसका स्वास्थ्य, सौंदर्य, दृढ़ता और तेज देखकर डाक्टर साहब चकित रह गए। आकस्मिक और अनिच्छित संभ्रमके कारण बेबस कुछ पीछे दबकर खड़े हो गए और उसका मुँह ताकते रह गए। उन्हें शायद अपने झूठे तेजका बड़ा घमंड था। उनका वह दर्प अपने भाईकी सच्ची तेजस्विताके आगे चूर होते देखकर मैं गर्वसे पुलकित हो उठी। पर कहीं राजू कोई बेजा बात उनसे न कह बैठे, इस चिंतासे मेरा कलेजा ज़ोरोंसे धड़क रहा था। मैं अभी तक 'बैडमिंटन'के कोर्टमें अपने ही स्थानपर खड़ी थी। वहाँसे हटनेकी हिम्मत नहीं होती थी।

राजू व्यंगपूर्वक मुस्कुराते हुए बोला—"आपकी यह 'लेटेस्ट थिओरी' बड़े मज़ेकी है, इसमें शक नहीं।"

अपनी सारी-शक्ति एकत्रित करके मैं आगे बढ़ी और दोनोंका पारस्परिक परिचय कराते हुए बोली—"डाक्टर साहब, यह मेरा भाई राजू है—राजू, यह डाक्टर कन्हैयालाल हैं।"

पारस्परिक अभिवादनके बाद डाक्टर साहब बोले—"आपकी तारीफ़ आपके पिताजीसे बहुत सुना करता था। आज आपके दर्शन पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका चेहरा और बदन देखने लायक़ हैं, इसमें शक नहीं।"

डाक्टर साहब लोगोंको वशमें करना जानते थे। प्रोफ़ेसर किशोरीमोहनने भी इस बातकी ताईद की थी, और मैं इसकी यथार्थताका अनुभव

कर चुकी थी। पर शायद उन्हें ख़बर नहीं थी कि संसारमें राजूकी प्रकृतिके असाधारण व्यक्ति भी होते हैं, जिनपर किसीके व्यक्तित्वका प्रभाव नहीं पड़ता।

राजूने उन्हें बनाते हुए कहा—"आप क्या सच कहते हैं? मेरा चेहरा क्या सचमुच देखनेके क़ाबिल है?"

इतने-से लड़केके आगे अपनेको परास्त होते देखकर डाक्टर साहब बौखला-से गए। कठपुतलीकी तरह बिना कुछ सोचे-समझे बोले—"जी हाँ!"

राजू ठठाकर हँस पड़ा।

१७

मुझे राजूपर बड़ा क्रोध आ रहा था। डाक्टर साहबकी वह बुरी हालत मुझसे देखी न गई। साहस करके दृढ़ताके साथ बोली—"चलिए डाक्टर साहब, भीतर चलें। यहाँ खड़े रहकर क्या कीजिएगा! आपसे एक विषयपर दो-चार बातें करना चाहती हूँ।"

यह कहकर जल्दीमें बुद्धि-भ्रम होनेसे उनका हाथ पकड़ना ही चाहती थी कि झट सँभल गई।

मेरी बात सुनकर रञ्जन चौंककर मेरा मुँह ताकता रह गया। यद्यपि मैं मन-ही-मन बहुत डरी हुई थी, तथापि इस समय मैंने उसकी दृष्टिके प्रति उपेक्षाका भाव दिखलाया।

डाक्टर साहब मेरे साथ हो लिए। बिना देखे हुए मैं समझ रही थी कि राजू उसी आश्चर्य-चकित दृष्टिसे हम लोगोंकी ओर ताके हुए हैं। कैसी ही उपेक्षा क्यों न दिखलाऊँ, उसका भय मेरे मनमें बना हुआ

था। मैं रह न सकी। कुछ दूर आगे बढ़कर पीछेकी ओर मुँह करके बोली—" राजू, तुम क्यों नहीं आते ?"

" अभी आता हूँ।" यह कहकर वह बरामदेमें टहलने लगा।

डाक्टर कन्हैयालालको मैं अपने कमरेमें ले गई। डाक्टर साहब एक आराम कुर्सीमें बैठ गए। मैं उनके सामने एक कौचमें बैठने और लेटनेकी मध्यावस्थामें अवस्थित हो गई। मैं अच्छी तरहसे जानती थी कि मेरा इस प्रकार बैठना शिष्टाचारके विरुद्ध है, पर मुझे यह भी विश्वास था कि डाक्टर साहब इस प्रकार मेरे शरीरका विलास और उसकी ललित गति देखकर शिष्टता और अशिष्टताका विचार सब भूल जायँगे। प्रत्येक नारीके हृदयमें येन-केन प्रकारसे पुरुषको रिझानेकी प्रवृत्ति वर्तमान रहती है, और इसके लिये बर्बरताकी चरम सीमा तक पहुँचनेके लिये भी वह तैयार रहती है।

अपने चेहरेमें निर्लज्जताकी लाज-भरी मुसकान झलकाती हुई मैं बोली— " डाक्टर साहब, मेरा इलाज न कीजिएगा ?"

डाक्टर साहब मुग्ध दृष्टिसे मुझे ताक रहे थे और न मालूम क्या सोच रहे थे। मेरे प्रश्नसे उनका मोह भंग हुआ। चौंककर बोले—" इलाज ? कैसा इलाज ? हाँ, ठीक है। मैं भूल गया था। आपने क्या इस दर्मियान अपना टेंपरेचर लिया था ?"

उनकी अन्यमनस्कता देखकर मैं अधिक मुस्कुराई। उत्तरमें बोली— " जी हाँ, टेंपरेचर तो लिया था। सतानबेके इर्द-गिर्द रहता है। किसी-किसी दिन, दिनके वक्त, 'नॉर्मल' में भी आ जाता है, पर ऐसा बहुत कम होता है। सुबहको तो कभी नॉर्मल नहीं रहता। बल्कि सतानबेसे भी कम रहता है।"

बड़े दुःखका भाव प्रकट करते हुए डाक्टर साहबने कहा—" यह अच्छा नहीं। स्त्रियोंका नॉर्मल टेंपरेचर तो वैसे ही पुरुषोंसे ज्यादा रहता है। और आप फ़र्माती हैं कि आपका सतानबेसे भी कम रहता है। 'एनीमिया'के कारण बदनमें खून कम हो जाता है, और खूनकी कमीसे बदनकी गरमी भी जाती रहती है। पर आपको अवश्य ही कोई-न-कोई भीतरी रोग है। किसी लेडी डाक्टरको आप पहले बुलावें।"

" आपका क्या यह ख्याल है कि लेडी डाक्टर मेरी बीमारी ठीक-ठीक मालूम करके उसका इलाज कर लेगी ?"

मेरा प्रश्न ज़रा विकट था। उसका मर्म न समझकर डाक्टर साहब बोले—" क्यों न करेगी ?"

मैंने कहा—" मुझे तो विश्वास नहीं होता !"

" तब ? आप क्या चाहती हैं ? आपकी भीतरी शिकायतोंका हाल मैं कैसे मालूम कर सकता हूँ ?"

" आप क्या यह समझते हैं कि जगह-जगह रबरकी नली लगाकर शारीरिक विकारोंका पूरा-पूरा ब्योरा मालूम कर लेनेसे ही क्या मनुष्यकी अस्वस्थताका कारण जाना जा सकता है ? शारीरिक विकार ही क्या सब कुछ हैं ?"

" नहीं, मानसिक विकारोंपर भी 'मेडिकल सायंस' विचार करता है। 'साइकोपेथी' का संबंध मानसिक विकारोंसे ही रहता है। मनुष्य क्यों पागल होता हैं, क्यों अनिच्छा होनेपर भी ऐसे-ऐसे काम कर बैठता है, जिनके लिये वह बार-बार पछताता रहता है, क्यों युधिष्ठिर और नल जैसे सात्विक पुरुषोंमें जुआ खेलकर अपना सर्वनाश करनेकी प्रवृत्ति पाई जाती है, क्यों रूसो और टाल्सटाय जैसे महात्मा घोर नीच

कर्मोंमें लिप्त रहे, क्यों महात्मा गाँधी जैसे सहृदय व्यक्तिको जीवन-भर अंत:प्रकृतिकी दुर्बलताएँ सताती रही हैं, क्यों विशेष-विशेष प्रकृतिके स्त्री-पुरुषोंमें खून करने या आत्महत्या करनेकी उत्कट लालसा रहती है, 'साइकोपेथी या 'साइकिएट्री'के अध्ययनसे हमें इन्हीं बातोंका ज्ञान होता है। हृदय और मस्तिष्कके सूक्ष्म कोषोंके दुर्बल पड़ जानेसे मनुष्यकी प्रकृतिमें असामंजस्य उत्पन्न हो जाता है। इस असामंजस्यके कारण वह ऐसे-ऐसे अभावनीय काम कर बैठता है और उसकी प्रवृत्तियाँ ऐसी अनोखी हो जाती हैं कि देखकर दिमाग चकरा जाता है।"

१८

किस उद्देश्यसे मैंने वह प्रश्न किया था और उत्तरमें कैसी-कैसी अनोखी बातें सुननेमें आईं! धिक्कार है डाक्टर लोगोंकी मोटी बुद्धिको! निराश होकर मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि अचानक रञ्जन अपने नंगे सिरमें अपने घुँघराले, चमकीले और कोमल बालोंकी बहार दिखलाता हुआ, अपनी सुंदर, शांत, धीर, गंभीर और करुण आँखोंसे अपूर्व, अनिर्वचनीय ज्योति विकीरित करता हुआ, अपने रूप और व्यक्तित्वसे डाक्टर साहबको चकित और मुझे गर्वित और रोमांचित करता हुआ आ पहुँचा। अपने भाईका सामान्य रूप और साधारण गुण भी देखकर किस बहनको गर्व नहीं होता! तब ऐसे तेजस्वी भाईको देखकर मुझे कैसे उत्कट आनंदका अनुभव होता होगा, इसका अनुमान सहजमें किया जा सकता है।

रञ्जन को देखते ही मैं सँभलकर उठ बैठी। मेरे सिरका अंचल नीचे खिसक गया था। डाक्टर साहबके सामने मैंने इस बातकी कुछ

परवा न की थी। बल्कि जान-बूझकर अपना सिर निर्वस्त्र ही रहने दिया था। पर रञ्जनके आनेपर एकदम अपना सिर ढक लिया। अँगरेज़ीमें यह मसल मशहूर है कि अपराधीका मन सदा शंकित रहता है। उस कमरेमें अकेले डाक्टर साहबके सामने उस अवस्थामें कौचके ऊपर लेटे हुए देखकर राजू अपने मनमें क्या सोचेगा, इस बातका ख्याल करके मैं काँपने लगी। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मुझे उस अवस्थामें देखते ही उसका मुँह पहले तो लज्जाके कारण लाल हो आया और पीछे धीरे-धीरे उसकी रंगत उतरती गई और वह पीला पड़ता गया। रञ्जनको देखते ही मेरे हृदयमें जो एक गर्वका भाव उत्पन्न हुआ था वह धीरे-धीरे तिरोहित होता गया और अज्ञात भयने उसका स्थान अधिकृत कर लिया।

डाक्टर साहब रूखी हँसी हँसकर उसका स्वागत करते हुए बोले—"आइए साहब, तशरीफ़ रखिए। मानसिक विकारोंकी चर्चा छिड़ रही है। आपकी बहन पूछ रही थी कि मनुष्यकी अस्वस्थतामें क्या मानसिक विकारोंका कोई महत्त्व नहीं है? मैं कहता हूँ कि शारीरिक विकारोंके कारण ही मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं।"

किस विषयकी चर्चा छिड़ रही है और किसकी नहीं, इसकी कैफ़ियत डाक्टर साहबने प्रारंभमें ही दे देना उचित समझा। इससे साफ़ उनकी घबराहट झलकती थी।

रञ्जन जब कुर्सीपर बैठ गया तो मैंने कहा—"डाक्टर साहब कहते हैं कि महात्मा गांधीको जीवन-भर भीतरी दुर्बलताओंका सामना करना पड़ा है, रूसो और टाल्सटायकी प्रकृति सात्विकी होनेपर भी उन्हें घोर नीच कर्मोंमें लिप्त रहना पड़ा है, मनुष्यकी अंतःप्रकृतिके इन सब अस्वाभाविक विकारोंका कारण 'मेडिकल सायंस' बतलाता है।"

रञ्जन जब मेरी बात सुन रहा था तो उसकी आँखोंमें आज सहज स्नेहका भाव वर्तमान नहीं था। उसके इस भावसे मेरे दिलमें गहरी चोट पहुँची। मेरी बात समाप्त होते ही उसने मेरी तरफ़से उसी दम मुँह फिरा लिया और व्यंगकी तीखी मुसकानसे डाक्टर साहबका मर्म बेधता हुआ वह बोला—"तब तो डाक्टर साहब, आप इसी दम कोई 'मिक्शचर' या 'टॉनिक' 'प्रेस्क्राइब' करके साबरमतीको भेज दीजिए। महात्माजीका दिल और दिमाग़ ठीक होनेसे उनके स्वभावमें 'सामंजस्य' और 'स्वाभाविकता' आ जायगी। इस प्रकार देशका कितना बड़ा उपकार होगा, इस बातका वर्णन नहीं हो सकता। उनकी प्रकृतिके असामंजस्यके कारण देश कभी नीचेकी ओर झुक रहा है कभी ऊपरकी ओर। डाक्टरी विद्याद्वारा इसका इलाज हो सकता है, यह बात बिलकुल नई, मौलिक और चमत्कारपूर्ण है।"

डाक्टर साहब इस समय तक घबराए हुए थे। इस बार कुछ खीझ उठे। कुछ तमककर बोले—"तो क्या आपका विश्वास 'साइकोपेथी'में नहीं है?"

"विश्वास? अजी रामका नाम लीजिए! यहाँ तो ईश्वरमें भी विश्वास नहीं है, प्रकृतिकी करामातमें भी नहीं। फिर डाक्टरी विद्या तो तुच्छ विषय है। हाँ, आपकी बातपर मुझे अवश्य विश्वास होना चाहिए।"

डाक्टर साहब चौंक पड़े। कुर्सीमें ज़रा डटकर बैठ गए और बोले—"तो क्या आप यह बात भी नहीं मानना चाहते कि उपयुक्त ओषधियोंके सेवनसे रोग अच्छे हो जाते हैं?"

राजूने स्थिरतापूर्वक कहा—"आप क्या सचमुच इस बातपर विश्वास करते हैं? अपनी छातीपर हाथ रखकर अपने अंतःकरणसे पूछिए कि

आपके इलाजसे आज तक जितने रोगियोंको फ़ायदा पहुँचा है वह क्या आपकी दवाइयोंके सेवनसे ? सच्चे दिलसे यह बात बतलाइए कि डाक्टरी विद्या कोई निश्चित विद्या है या अटकलपच्चू शास्त्र ? प्रकृतिके सुनियत और सुनिश्चित नियमोंसे क्या उसका कुछ भी संबंध है ? "

डाक्टर साहब राजूकी बातका कोई उत्तर न दे सके। पर अपनी हार स्वीकार करना वह अत्यंत लज्जास्पद समझते थे। इस कारण कुछ अकड़कर दृढ़ताका ढोंग रचकर बोले—" है क्यों नहीं ! प्रकृतिसे उसका संबंध नहीं है तो किससे है ? "

उनकी व्यर्थकी अकड़बाज़ी देखकर राजू कुछ अजीब ढंगसे मुस्कुराया। अपना स्वर अधिक कोमल करके बोला—" अच्छी बात है, साहब। यह बात मान ली कि प्राकृतिक नियमोंके ऊपर ही आप लोगोंकी विद्या स्थित है। पर यह तो बतलाइए कि जबसे सभ्य-समाजमें वैद्यक-शास्त्रका प्रचार हुआ है तबसे मानव-शरीरने कितनी तरक्की कर-ली है ? मैं तो स्पष्ट ही यह देखता हूँ कि डाक्टरी विद्या जितनी ही उन्नति करती जाती है, मानवसमाजमें रोगोंकी वृद्धि भी उसी परिमाणमें होती जाती है। इस विंश शताब्दीमें प्रतिवर्ष नए-नए रोगोंकी सृष्टि हो रही है। प्रतिवर्ष लाखों मनुष्य कालकी कराल गतिमें बेबस बहते चले जा रहे हैं, पर डाक्टर लोग यह देखकर भी कि रुद्रके प्रलयंकर चक्रका सामना वे किसी प्रकार नहीं कर सकते, अपनी करतूतसे बाज़ नहीं आते। मज़ा यह है कि ज्यों-ज्यों सभ्यता आगेको बढ़ती जाती है, डाक्टरोंकी संख्या उससे डबल तेज़ीके साथ बढ़ रही है। अकेले इंगलैण्डमें इस समय कम-से-कम पचीस हज़ार डाक्टर वर्त्तमान हैं। कुछ ठिकाना है ! अब बतलाइए, इन महापुरुषोंने इंगलैंडको क्या फ़ायदा पहुँचा रक्खा

है ? क्या वहाँके लोगोंकी आयु बढ़ने लगी है ? क्या वहाँके लोग अब 'रोग-प्रूफ़' हो गए हैं ?"

डाक्टर साहबने कहा—" 'रोग-प्रूफ़' नहीं हुए—हो भी कैसे सकते हैं ! पर हाँ, वहाँ डाक्टरोंकी संख्या अधिक होनेसे वहाँके लोगोंको रोग कम सताया करते हैं। इधर हिंदोस्तानका हाल देखिए। डाक्टरोंपर हम लोगोंका विश्वास नहीं है, डाक्टरोंको यहाँ उत्साह नहीं मिलता। इसलिये हम देखते हैं कि यहाँ भरी जवानीमें ही प्रतिदिन असंख्य स्त्री-पुरुष मौतके शिकार बनते हैं।"

व्यंगके साथ उनकी बातपर हुँकारा भरकर राजू बोला—" जी हाँ। यह तो है। पर आप क्या दावेके साथ यह बात कह सकते हैं कि विलायतके लोग भरी जवानीमें नहीं मरते ? अनुभव यही कहता है कि भरी जवानीमें जैसे भयंकर रोगोंसे वहाँके लोग पीड़ित रहते हैं उसका अनुमान भी भारतके लोग नहीं कर सकते। मांस और मदिराके सेवन और मायावी युवतियोंके सत्संगसे उन लोगोंका जो महोपकार होता है, उससे परिचित होनेका सौभाग्य हमारे युवकोंको कहाँ प्राप्त होता है ! वहाँके युवक इस प्रकारके घृणित भोग-विलासमें रत रहनेके कारण बीस वर्षकी अवस्थासे ही 'कॉलिक,' 'कैंसर,' 'हेमरेज,' 'एपेंडिसा-इटिस' और 'फ़िरंगी रोग'से पीड़ित होने लग जाते हैं। वहाँकी युवतियाँ तो और भी अधिक रोग-ग्रस्त रहती हैं। यह सब होनेपर भी औसतमें वहाँके लोग हिंदोस्तानियोंसे अधिक परिश्रमी होते हैं—इसका कारण यही है कि जीवनके आनंदसे वे लोग परिचित हो गये हैं, और हम लोगोंके हृदयोंमें नाना कारणोंसे जीवनके प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। अब सवाल यह है कि अगर डाक्टरी विद्या रोगोंको उप-शम करनेका दम भरती है, तो जिस देशमें इस विद्याकी सबसे अधिक

उन्नति हुई है, वहाँके लोगोंको रोग क्यों अधिक सताते हैं ? असल बात यह है कि मनुष्य-समाज अंध, स्वतंत्रबुद्धिसे हीन और अनुकरणशील है। प्रकृतिके अनंत रहस्यका एक आध बिखरा हुआ छींटा उसे कहीं मिल जाता है तो वह फूला नहीं समाता और एकदम यह अनुमान कर लेता है कि उसने पूरे रहस्यका पता लगा लिया है। डाक्टरोंने रोगोंका बाहरी रूप देखकर अपने-अपने अनुभवसे अनोखी-अनोखी दवाइयोंका आविष्कार किया है। अब यह मज़ा हो गया है कि प्रतिदिन सैकड़ों नई-नई दवाइयोंका आविष्कार होता जाता है और एक दवाईके सेवनसे जो ख़राबी पैदा होती है उसके निराकरणके लिये दूसरी दवाई दी जाती है। इधर मरीज़ यह समझता है कि उसका इलाज हो रहा है। यह बड़े मज़ेका इलाज है, इसमें शक नहीं !"

१९

डाक्टर साहब और मैं बड़े ध्यानसे उसकी बातें सुन रहे थे। इसके उत्तरमें एक शब्द भी डाक्टर साहबके मुँहसे नहीं निकलता था। कुछ देरतक चुप रहकर रूमालसे अपना मुँह पोंछकर वह फिर कहता चला गया—" डाक्टर लोग मनुष्यका स्वास्थ्य बढ़ानेके लिये पैदा नहीं हुए हैं। उनका उद्देश्य रोगोंको दमन करनेका रहता है। रोगोंसे ही उनका संबंध रहता है, मेडिकल कालेजमें वे लोग रोगोंका ही अध्ययन करते हैं, स्वास्थ्यका नहीं। और तो क्या जीवोंमें रोगोंके कीटाणुओंका प्रवेश कराके विशेष-विशेष रोगोंके निरीक्षणमें विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं। ऐसी हालतमें स्वास्थ्यका विचार ही उनके मस्तिष्कमें कैसे उत्पन्न हो सकता है! स्वास्थ्यको 'बैकग्राउंड'में रखकर

रोगोंके अध्ययनको प्रधानता देनेका अर्थ यही है कि जीवित मनुष्यको छोड़कर उसकी छायाकी गतिसे उसका भीतरी हाल मालूम किया जाय। इस कारण डाक्टरी विद्या मूलमें ही सत्ताहीन और ढकोसलेसे भरी है। असल बात यही है कि मनुष्य जन्मसे ही रोग और मृत्युकी ओर, अपने अनजानमें, धीरे धीरे एक-एक पग आगेको बढ़ता ही जाता है। उसके सारे जीवनको अगर हम मृत्यु नामक तीर्थकी महायात्रा कहें तो कुछ अनुचित न होगा। क्यों आदमी पैदा होता है, क्यों मरता है, क्यों यह शरीर नाशवान् है, क्यों यह रोग-व्याधिसे पीड़ित रहता है, स्वास्थ्यका आदर्श क्यों एक निरी कल्पना है, ये सब गहन तथ्य हैं। इनका पता लगाना मनुष्यकी क्षमताके अतीत है। ऐसी हालतमें डाक्टर लोगोंका दंभ और विद्या-चातुर्य अत्यंत असहनीय जान पड़ता है। अगर संसारसे डाक्टरी विद्या बिल्कुल उठ जाय तो मनुष्य प्राथमिक युगके दीर्घजीवी और अपेक्षाकृत स्वस्थ जंगली लोगोंकी तरह स्वाभाविक जीवन व्यतीत करके बिना रोगोंकी चिंताके शांतिसे मर सके!"

उसकी बात समाप्त होनेपर कुछ देर तक कमरेमें बिल्कुल सन्नाटा रहा। अचानक डाक्टर साहबने उसकी पीठ ठोंकी और बोले—"खूब भाई खूब! यह बड़े मजेकी लेकचरबाजी रही। इतनी छोटी उम्रमें ही आप जीने और मरनेके सवालके पीछे लग गए। यह अच्छा ही है। पर हम करें क्या! हमारा तो पेशा ही यही है। कोई मरे चाहे कोई बचे। यहाँ तो पापी पेटसे मतलब है। डाक्टरी विद्या कैसी ही निगोड़ी क्यों न हो, हमारे लिये तो कल्पवृक्ष है। हाँ, अगर आप लोग कृपापूर्वक मेरे लिये दो रोटी सुबह और दो रोटी शामका बंदोबस्त कर सकें तो मैं अभी यह पेशा छोड़ दूँ!"

डाक्टर साहबके इस सरल परिहाससे राजूके मुँहसे व्यंगका भाव तिरोहित हो गया । वह भी निष्कपट परिहासके स्वरमें बोला—"क्यों, आप क्या अकेले हैं ? मियाँ-बीबीके बीच क्या 'डॉयवोर्स'का मामला चल रहा है ?"

"नहीं साहब, मेरे तो बीबी ही नहीं है, 'डायवोर्स' कहाँसे हो ! मैं बिलकुल अकेला और भार-मुक्त हूँ । आप लोगोंको केवल मेरी ही चिंता करनी पड़ेगी । कहिए, आप क्या राज़ी हैं !"

डाक्टर साहबकी अवस्था प्रायः बत्तीस सालके होगी । अभी तक उनका विवाह ही नहीं हुआ है, या उनकी स्त्रीकी मृत्यु हो गई है, यह बात जाननेके लिये मैं बड़ी उत्सुक हो रही थी । पर लाचार थी । फिर भी इस बातसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि राजूके और उनके बीच विरोध और विद्वेषका जो भाव धीरे-धीरे जागरित हो रहा था, वह अब ठंडा पड़ने लगा है ।

राजूने कहा—"हमें एक 'फ़ेमीली' डाक्टरकी ज़रूरत है । आपकी इच्छा हो तो आप शौक़से यहाँ रह सकते हैं ।"

डाक्टर साहबको संभवतः बड़ा आश्चर्य हुआ । बोले—"यह क्यों साहब ! डाक्टरोंपर तो आपका बिलकुल विश्वास ही नहीं है । इसी बातपर इतनी बहस हो गई । अब आप कहते हैं कि 'फ़ेमीली' डाक्टरकी ज़रूरत है ! "

राजूने कहा—"औरतोंको यह बात कैसे समझाई जाय ! उनके लिये तो आप लोग ही सृष्टि-रक्षक हैं । अम्माँसे अगर आप यहाँ रहनेका प्रस्ताव करते तो वह फूली न समातीं । "

मैं रह न सकी । बोल उठी—"सिर्फ़ अम्माँ ही क्यों, मैं भी आपसे अनुरोध करूँगी कि आप यहीं रहें । "

मेरी यह बात बिल्कुल असंगत, असामयिक और अशोभन थी। कहते ही लज्जासे मेरा सारा शरीर जर्जरित हो उठा। मैंने सिर नीचा कर लिया। राजूके मुँहकी ओर ताकनेका मुझे साहस नहीं हुआ।

कुछ देर तक चुप रहकर राजूने कहा—"चलिए डाक्टर साहब, आपको सैरके लिये ले चलें। बैठे-बैठे जी उकता गया है। पार्ककी हवा खाते हुए ज़रा चौककी तरफ़ हो लें।"

डाक्टर साहब प्रसन्न होकर बोले—"अच्छी बात है।"

राजूके साथ घनिष्ठता बढ़ते देखकर वह अपनी प्रफुल्लता छिपा न सके।

मैंने कहा—"मैं भी चलूँगी।"

अपनी असहनीय तीक्ष्ण दृष्टिसे मेरी ओर ताककर राजूने विना कुछ उत्तर दिए मुँह फिरा लिया और वह शोफ़रको बुलाने चला गया।

दूसरा भाग।

—:०:—

१

तबसे डाक्टर कन्हैयालाल नित्य हमारे यहाँ आने लगे। वह अब विना किसी द्विविधा या रुकावटके मेरे पास आ जाया करते थे। हम दोनों अकेले घंटों बैठकर गप्पें मारा करते थे। कामकी बातें कभी नहीं होती थीं। मेरा काम ही क्या था! पर हम लोग ऐसा भाव दिखलाते जैसे कोई बड़ा भारी दायित्व दोनोंके ऊपर आ पड़ा हो, और एक दूसरेसे सलाह लेना परम आवश्यक हो गया हो। जिस दिन किसी कारणसे डाक्टर साहब मेरे पास न आ सकते उस दिन मिनटोंको गिनते-गिनते अत्यंत अधैर्य और व्याकुल उत्सुकताके साथ मेरा समय बीतता था।

ज्यों-ज्यों डाक्टर साहबसे मेरी घनिष्ठता बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों मेरी स्नायविक दुर्बलता भी ज़ोर पकड़ने लगी। उनके सामने मेरा हृदय उद्दीप्त होकर उमंगसे भर जाता था, पर उनके चले जानेपर मुझे ऐसा जान पड़ता जैसे सारा शून्य अपना विकराल मुँह खोलकर मुझे निगलनेको तैयार है, और एक भयंकर अवसादके बोझसे मेरी छाती दब जाती थी। मैं गाढ़ी नींदके लिये कुटुंब-भरमें विख्यात थी। पर अब धीरे-धीरे मुझे उन्निद्राका रोग पकड़ने लगा। रातको खा-पीकर जब मैं बिस्तरमें लेट जाती तो मेरी आँखें उसी दम झपने लगतीं और कुछ देरके लिये मुझे नींद आ जाती। पर वह नींद गाढ़ी नींद नहीं कही जा सकती। अनेकानेक विकट और भयंकर स्वप्नोंके

उपद्रवसे नींदके समय भी मेरा दिल ज़ोरोंसे धड़कता रहता। कुछ ही देरके बाद अचानक नींद उचट जाती और तब मेरा भय दुगना बढ़ जाता। यद्यपि मेरे कमरेकी बत्ती रात-भर जली रहती थी, पर फिर भी आधी रातमें विकट स्वप्न देखनेके बाद अचानक नींद उचटनेपर भयके कारण मेरी आत्मा इस लोकमें नहीं रहती थी। बत्तीके इर्द-गिर्द पतिंगे फड़फड़ाया करते थे। उनके फड़फड़ानेके शब्दसे ही मैं बीच-बीचमें चौंक पड़ती। मैं ऐसी हौलदिल हो गई कि उस कमरेमें अकेले पड़े रहना मेरे लिये कठिन हो गया। लीला अम्माँके साथ सोया करती थी। जब मेरी हालत बहुत ख़राब होने लगी तब मैंने अम्माँसे लीलाको अपने साथ सुलानेकी आज्ञा माँगी। मेरी घबराहट और डर देखकर अम्माँ मुस्कुराईं।

तबसे लीला मेरे ही कमरेमें सोने लगी। सोनेके पहले वह कहानी सुनानेके लिये ज़िद करती। कहानी सुननेके बाद जब वह सो जाती तो मुझे उसके निश्चित निर्विकार जीवनपर ईर्ष्या होने लगती।

एक स्त्री दूसरी स्त्रीके सामने अपना डरपोकपन जाहिर नहीं करना चाहती; पर पुरुषके (विशेषतया अपने प्रेमिक जनके) निकट अपनी दुर्बलता, हीनावस्था, और दुर्गतिका वर्णन करनेमें अवर्णनीय आनंदका अनुभव करती है। डाक्टर साहबके निकट मैं दिल खोलकर अपनी शोचनीय अवस्था व्यक्त करके उनकी समवेदना उभाड़नेकी चेष्टा करती थी। वह मुझे परहेज़से रहनेका उपदेश देते और एक-आध दवा 'प्रेस्क्राइब' कर जाते। मैं शौक़ और विश्वाससे उस दवाको पीती थी। उनके ऊपर मेरा विश्वास देखकर राजू बहुत कुढ़ता था और बीच-बीचमें बोलियाँ सुनाता था।

अम्माँ डाक्टर साहबको देखकर बहुत प्रसन्न थीं। डाक्टर साहब भी उनके प्रति यथेष्ट श्रद्धाका भाव प्रदर्शित करते थे । एक दिन मुझे हलका-सा बुखार आया । अम्माँ बहुत घबराईं । डाक्टर साहबके आनेपर रोती हुई बोलीं—" इस लड़कीकी फ़िक्रके मारे मैं रात-दिन बेचैन रहती हूँ, डाक्टर साहब ! कभी इसे बुखार आता है, कभी-पेटमें दर्द रहता है, कभी नींद न आनेकी शिकायत करती है । मुझे बिलकुल उम्मेद नहीं रहती कि यह ज्यादा बचेगी । इसका इलाज कीजिए, नहीं तो हम लोग कहींके न रहे । "

डाक्टर साहब दिलासा देते हुए बोले—" चिंता किसी बातकी न कीजिए । इस उम्रमें अस्सी फ़ीसदी स्त्रियोंको रोग आ घेरते हैं। दो-एक सालके बाद इनका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो जायगा । "

आज बहुत दिनोंके बाद अम्माँके हृदयमें मेरे प्रति स्नेहका भाव उमड़ पड़ा था । अपने सभ्य समाजके निमंत्रण-आमंत्रण और उत्सवोंमें व्यस्त रहनेके कारण आज तक हम लोगोंकी खबर पूछनेकी भी फुर्सत उन्हें नहीं रहती थी । यदि हमसे वह कभी बोलतीं भी तो झिड़ककर और रुखाईके साथ । मैं यह नहीं कहती कि उनके मनमें हमारे प्रति स्नेहका भाव वर्त्तमान नहीं था । पर उनकी उपेक्षा आश्चर्यजनक और असाधारण थी । आज उनका दिल मुझे देखकर भर-भर आता था । वह डाक्टर साहबके सामने बिलख-बिलखकर, फूट-फूटकर रोने लगीं। शायद उन्हें इस बातका ख़याल हुआ कि वह परिणतावस्थामें ' सोसायटी' के आनंदमय उत्सवोंमें सम्मिलित होकर जीवनका सुख प्राप्त कर रही हैं और उनकी लड़की नई जवानीमें संगहीन, अकेली और चिंता-ग्रस्त रहती है—चिंताओंसे पीड़ित रहनेके कारण ही वह बीमार रहती है और आज

उसे इसी कारण ज्वर आया है। मैं ठीक कह नहीं सकती कि वह क्या सोच रही थीं। पर मैंने ऐसा ही अनुमान किया।

२

मेरा बुखार बढ़ता चला गया। घरके सब लोग चिंतित हो उठे। राजू भी बहुत घबराया। लीलाको मैं हरवक्त अपने पास रखना चाहती थी, पर वह बैठे-बैठे उकता जाती थी और बाहर खेलने चली जाती। तेरह सालकी हो चली थी, पर अभी तक अज्ञान थी। उसके लिये मुझे अधिक दुःख था।

डाक्टर साहब दिनमें तीन-तीन चार-चार बार आते थे और जी-जानसे मेरी टहलमें लगे थे। छठे दिन मेरे सारे शरीरमें भयंकर वेदना होने लगी। सिरके दर्दका तो वर्णन नहीं हो सकता। "हाय अम्माँ! हाय काका! हा राम!" चौबीसों घंटे मैं यही चिल्लाया करती।

बीमारीका बुरा हाल देखकर डाक्टर साहब चौबीसों घंटे मेरे पास रहने लगे। कभी टेंपरेचर लेते, कभी नाड़ी देखते, कभी इंजेक्शन देते, कभी दवाई पिलाते, कभी धाईको सारा बदन गरम पानीसे सेंकनेका उपदेश देते। उनका अक्लांत परिश्रम देखकर राजूकी आँखोंमें भी उनके प्रति कृतज्ञताका भाव छलक उठता था, इस बातपर मैं अपनी उस बुरी हालतमें भी गौर कर रही थी।

दसवें दिन मैं सन्निपात-ग्रस्त होकर बेहोश हो गई। दो-तीन दिन-तक यही हाल रहा। फिर धीरे-धीरे चैतन्य होने लगा। धीरे-धीरे खानेकी रुचि जागरित हुई। धीरे-धीरे कमजोरी घटने लगी। प्रायः चालीस दिनके बाद मैं चारपाईसे उतरकर नीचे पाँव रखनेमें समर्थ

हुई। मेरा पुनर्जन्म हो गया था। डाक्टर साहबका विजयोल्लास उनके मुँहमें उद्दाम भावसे, असंयत तीव्रतासे चमकने लगा।

अम्माँ कृतज्ञतासे गद्‌गद होकर गिड़गिड़ाकर उनके पैरोंमें गिर पड़ीं। चौंककर, घबराते हुए डाक्टर साहबने उनका हाथ पकड़ा और ऊपरको उठाया। बोले—" आप ऐसी बुद्धिमती होकर यह क्या करती हैं!"

" आपकी ही वजहसे मेरी लड़कीकी जान बच गई। नहीं तो क्या आज मैं कभी—" अम्माँ अपनी बात पूरी न कर सकीं। अंचलसे मुँह ढाँपकर बेबस रोने लगीं।

" यह कैसे हो सकता है! आदमीकी क्या ताक़त कि वह किसीको बचा सके और किसीको मार सके! जिसने सबको पैदा किया है उसके कोपका सामना कोई नहीं कर सकता। उसीकी दयासे आज हम लोग घोर अनर्थसे बच गए।"

डाक्टर कन्हैयालालको मैं नास्तिक समझती थी। पर आज मालूम हुआ कि सृष्टिके अज्ञात परिचालकपर उनका भी विश्वास है।

मैं उनकी ओर ताककर बिना कुछ कहे, यह भाव जतलाती हुई मुस्कुराने लगी कि मेरे ऊपर उनका कोई अहसान नहीं है—अपना कर्त्तव्य समझकर अपनी ग़रज़से ही उन्होंने मेरी टहल की है। मेरी इस अकृतज्ञ मुसकानके उत्तरमें उन्होंने अपनी बाँकी चितवनसे मेरा सुकुमार हृदय चीर डाला। उनकी इस मुसकान-रहित, आवेश-विह्वल चितवनमें वही चिर-परिचित नशा पूर्णमात्रामें विद्यमान था। उसकी अनिर्वचनीयतासे पुलकित होकर मेरा कलेजा धड़कने लगा। जी चाहने लगा कि रो-रोकर उनके पैरोंमें गिर पड़ूँ और सारे कलेजेको आँसुओंके रूपमें बाहर निकाल डालूँ। उनकी आँखोंके उज्ज्वल, सरस पर करुण आवेशसे मेरी मुसकान

किसी मंत्रके बलसे तिरोहित हो गई और मेरे हृदयमें गंभीर विषाद छा गया।

राजूने आकर कहा—" डाक्टर साहब, इतने दिनोंकी कड़ी मेहनतसे आप थक गए हैं। चलिए एल्फ्रेड पार्ककी ठंडी हवासे थकान दूर कीजिए।"

मैंने कहा—" मैं भी चलूँगी।"

डाक्टर साहब बोले—" यह क्यों! आपको अभी कुछ दिनोंतक 'कंप्लीट रेस्ट' करना होगा।"

" तो आप लोग भी यहीं बैठे रहें। मैं यहाँ अकेली नहीं रह सकती।"

राजू कुछ देर तक बड़े ग़ौरसे मेरी ओर ताकता रहा।

" आप बैठिए डाक्टर साहब, मैं चला।" यह कहकर वह विना किसीके उत्तरकी प्रतीक्षा करके चल दिया। अपने भाईकी निर्मोहिता देखकर मैं दंग रह गई।

कुछ देर तक डाक्टर साहब और मैं सन्न होकर बैठे रहे। फिर डाक्टर साहब बोले—" आपके भाई सनकी और तेज़-मिज़ाज़ मालूम होते हैं।"

मैं बलपूर्वक चेष्टा करके मुस्कुराने लगी। मेरी उस मुस्कुराहटमें ग्लानिका आभास शायद स्पष्ट झलक रहा था।

३

दिन ढल चुका था। मैं अपने कमरेमें बैठकर चाय पी रही थी। डाक्टर साहब इतनेमें आ खड़े हुए। मुझे इस समय चाय पीते देखकर आश्चर्यसे पूछने लगे—" यह क्या! आज बेवक्त क्यों?"

मैंने कहा—"चायके लिये मैं कभी वक्त-बेवक्तका विचार नहीं करती। जब जी चाहता है पी लेती हूँ।"

"पर माफ़ कीजिए, चाय आपके लिये किसी तरह भी फ़ायदेमंद नहीं है। मैंने आपसे 'बाइनो-हाइपोफ़ास्फ़ाइट्स'के सेवनके लिये कहा था। वह क्या आपने मँगाया है!"

"जी हाँ।"

"बस उसीका सेवन करते चले जाइए। चायको विष समझकर त्याग दीजिए।"

"यह कैसे हो सकता है, डाक्टर साहब? चायके कारण ही मेरे प्राण टिके हैं। यही मेरे जीवनका एक आधार है और इसीको आप छोड़ देनेके लिये कहते हैं।"

डाक्टर साहब खीझ उठे। बोले—"स्त्री-जाति ज़हरीली होती है। इसलिये ज़हरके पीनेसे उसके प्राण टिके रहें, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। विषके कीड़े विषके सेवनसे ही प्राण धारण करनेमें समर्थ होते हैं।"

मैंने पूछा—"क्यों, स्त्री-जाति ज़हरीली क्यों होती है?"

यह प्रश्न करते समय मैंने अपनी आँखोंके विषका प्रयोग डाक्टर साहबपर करना चाहा था।

कुछ विचलित होकर अपनी दृष्टिकी प्रखरतासे उन्होंने मेरा मर्म बेधनेकी चेष्टा की। अपनी आवेश-विह्वल आँखोंसे एकटक मुझे ताककर मंद-मंद मुस्कुराकर मुझे मंत्र-मुग्ध करते हुए बोले—"स्त्री-जाति क्यों ज़हरीली होती है, तुम्हें क्या नहीं मालूम?"

आज पहली बार उन्होंने मेरे लिये ‘ आप ’ के बदले ‘ तुम ’ का प्रयोग किया। अनिर्वचनीय पुलकसे व्याकुल होकर मैंने काँपती हुई आवाज़में कठपुतलीकी तरह मंत्र-विह्वल होकर बेबस उत्तर दिया—“ नहीं । ”

“ अच्छी बात है । अगर मालूम नहीं है तो मालूम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । ”

मैं कुर्सीसे उठकर, न मालूम क्या सोचकर चारपाईपर बैठ गई । डाक्टर साहब अभी तक खड़े थे और अपने ‘ह्विप’ को इधर-उधर घुमा रहे थे। मैं अपनी स्प्रिंगकी चारपाईका ऊपरका डंडा पकड़कर उसके सहारे लेट गई। पर कुछ ही देरके बाद लोहेके डंडेकी कठिनताके कारण मेरी पीठकी हड्डी दुखने लगी और मैं सँभलकर उठ बैठी। दोनों हाथोंको चारपाईकी दोनों ओर फैलाकर मैंने अपने पाँव नीचेको लटका दिए। मेरी साड़ी सिरसे नीचेको खिसक गई थी। मैंने उसे फिरसे ऊपरको समेटनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी।

अपना यह अद्भुत विलास डाक्टरसाहबको दिखलाती हुई मैं बोली—“ बैठिए डाक्टर साहब, आप खड़े क्यों हैं ! ”

घबराहट और भ्रांतिके कारण डाक्टरसाहब शायद पहले चारपाईके ऊपर ही बैठनेको आगे बढ़े थे, पर किसी अज्ञात शक्तिद्वारा अकस्मात् नियंत्रित होकर एकदम ठिठककर सामनेवाली आराम कुर्सीपर बैठ गए। मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी।

लज्जित और संभवतः अपमानित होकर डाक्टर साहब बोले—“क्यों, हँसनेकी क्या बात है ? ”

"माफ़ कीजिए डाक्टर साहब, मेरा मन आज ठिकाने नहीं है। इस लिये विना किसी कारणके बावली-सी हँस रही हूँ। बहुत संभव है, थोड़ी ही देरमें रोने लगूँगी।"

डाक्टर साहब दोनों हाथ जोड़कर स्तुतिका स्वाँग रचकर बोले—"हे मायावती, तुम धन्य हो! जब हँसी आई, तुम हँस देती हो, रोना आया, रो देती हो। हँसने और रोनेके बीचकी अवस्थासे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं। आत्माको पीस देनेवाली यह भयंकर मध्यावस्था भगवानने पुरुषके लिये ही रची है।"

हाथ जोड़नेके समय भी 'ह्विप' उनके हाथमें ही था। मैंने कहा—"स्तुतिके समय पुष्प और वेलपत्रसे देवी-देवताकी अर्चना होती है। आप क्या कोड़ेसे मेरी अर्चना करने चले हैं?"

डाक्टर साहब ठठाकर हँस पड़े। अकस्मात् दरवाज़ेपर राजू आ खड़ा हुआ। यमदूत भी यदि वहाँपर प्रत्यक्ष दिखलाई देता तो भी मैं शायद इतनी भयभीत न होती जितनी उसके आनेपर हुई। सिरको अंचलसे ढककर हड़बड़ाती हुई मैं चारपाईपरसे उठ बैठी। डाक्टर साहब भी सन्न थे।

राजू विना कुछ कहे उलटे पाँव लौट चला। मैं सोचने लगी—"क्या यम भी मेरे भाईकी तरह रूपवान् है?"

४

हमारे कालेजकी लड़कियोंने एक नाटक खेलनेका उद्योग किया था। बीमार होनेके सबब मैं कोई 'पार्ट' इस साल न ले सकी थी। फिर भी नाटक देखनेकी बड़ी इच्छा थी। राजूके लिये

अलग निमंत्रण आया था। नाटकमंडलीकी सेक्रेटरी साहिबा उसपर विशेष रूपसे प्रसन्न थीं। एक ही दिनके परिचयमें वह उसके गुणोंपर मुग्ध हो गई थीं। पर राजूने जानेसे साफ़ इनकार कर दिया। इधर डाक्टर कन्हैयालाल इस नाटकके लिये विशेष उत्सुक और लालायित हो रहे थे। इस नाटकमें पुरुषोंके लिये निषेध था। पर एक नियम यह था कि सेक्रेटरीकी अनुमतिसे दो-एक विशेष-विशेष पुरुष प्रवेश कर सकते हैं। सेक्रेटरी साहिबासे डाक्टर साहबके दुर्लभ गुणोंका बखान करके मैंने उनके लिये अनुमति माँगी। कमलिनी (सेक्रेटरी साहिबाका यही नाम था) इस ढंगसे मुस्कुराने लगी जैसे वह मेरे दिलकी सब बातें ताड़ गई हो। बोली—" ऐसे गुणवान पुरुषको स्त्रियोंकी महफ़िलमें लाना क्या खतरेकी बात नहीं है ? "

मैंने पूछा—" खतरा कैसा ? "

" अरी पगली, समझती नहीं ? तेरे अनुमोदित और इच्छित पुरुषकी आँखें जब इतनी अलबेली नारियोंपर दौड़ेंगी तो क्या फिर वह तेरी परवा करेगा ? "

" दुर ! " कहके मैंने गुस्सेमें आकर उसकी पीठपर एक धौल जमा दिया। पर उसकी इस बातसे मेरे हृदयमें भयका संचार होने लगा।

कमलिनीने कहा—" अच्छी बात है। मुझे कोई ऐतराज़ नहीं। पर मैं सावधान किए देती हूँ। पीछे पछताना पड़ेगा।"

युनिवर्सिटीके लड़कों और प्रोफ़ेसरोंके साथ कमलिनीकी बड़ी घनिष्ठता थी। बहुत संभव है, उन लोगोंके स्वभावसे परिचित होनेपर वह पुरुषोंकी प्रकृतिसे अभिज्ञ हो चुकी थी। उसकी बातसे कुछ भय होनेपर भी मुझे विशेष चिंता नहीं हुई। मुझे अपने रूप-गुणका बड़ा घमंड

था । किसी व्यक्तिको मुझे छोड़कर अन्यत्र जानेका लोभ हो सकता है, यह आशंका मेरे हृदयमें उत्पन्न नहीं हो सकती थी ।

अम्माँने जानेका विचार किया था । पर सिरमें दर्द हो जानेके कारण वह न जा सकीं । लीला जाना चाहती थी, पर राजूने उसे समझा-बुझा-कर रोक लिया । मुझसे राजूने कुछ नहीं कहा; और ऐसा भाव प्रदर्शित किया जैसे मैं उसकी बहन ही नहीं हूँ । डाक्टर साहबकी संरक्षकतामें मैं रातको खा-पीकर चल पड़ी ।

नाटक-गृहके भीतर प्रवेश करके देखा कि वह वृहत् कक्ष विलास-वती युवतियों और नवीना किशोरियोंकी सुमधुर गुंजारसे मुखरित था । एक-आध कोनेमें दो-एक पुरुष भी दृष्टिगोचर हो रहे थे, पर वे इस स्त्री-सागरमें बुद्बुदकी तरह विलीन होनेको थे । ऐसी हालतमें एक प्रखर व्यक्तित्व-संपन्न दर्शनीय पुरुषको बग़लमें लेकर भीतर प्रवेश करनेमें मैं लज्जासे गड़ी जाती थी । हमारे प्रवेश करते ही तत्काल सैकड़ों उज्ज्वल आँखें हमारी ओर आ लगीं । डाक्टर साहबने सगर्व एक सरसरी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई । स्त्री-समाजकी मुग्ध दृष्टिसे उल्लसित होनेके कारण उनका चेहरा तमतमाने लगा । मैं मन-ही-मन कहने लगी—"हे गोपी-जन-वल्लभ ! तुम्हें नमस्कार है ।"

डाक्टर साहबकी दृष्टि अत्यंत चंचल हो गई थी । वह कभी बाईं तरफ़की युवतियोंको घूर रहे थे, कभी दाहिनी तरफ़को ताकते थे और कभी पीछेको । मैंने ईर्ष्यासे जलकर धीमे स्वरमें उनके कानके पास जाकर कहा—"क्या तृप्ति नहीं होती ?"

चौंककर वह बोले—"ऐं ! यह क्या कहती हो ! मैं अपने एक 'फ्रेंड'को ढूँढ़ रहा था !"

"पुरुष या स्त्री!" प्रश्न करते समय मेरी आवाज काँप गई थी। यह बात शायद डाक्टर साहबके ध्यानमें आ गई। इसलिये उत्तर देते समय वह पल-भरके लिये हिचकिचा गए।

बोले—"थे तो पुरुष ही, पर शायद वहाँ स्त्रीके आकारमें मिल जाँय, यह दुराशा मेरे मनमें समा रही थी।"

उत्तर देनेका यह ढंग बिलकुल नया था, इसमें संदेह नहीं। पर वह साफ़ बनावटी था। मैं कुढ़कर, जी मसोसकर रह गई। मनमें कहने लगी—"कौन चुड़ैल इनकी संगिनी है, यह बात अगर मालूम हो जाती तो एक बार कलमुहीको देख लेती कि वह मुझसे कितनी अच्छी दिखलाई देती है।"

५

पर्दा उठा। आरंभमें परियोंका मंगल-गान कोरसमें गाया जाने लगा। अलबेली युवतियाँ नाना रंगोंके मनोहर वस्त्र पहनकर, आभूषणोंसे सज्जित होकर, बालोंको बिखेरकर, पौडरसे रंजित होकर, विद्युत्‌के उज्ज्वल प्रकाशसे प्रदीप्त और प्रफुल्लित होकर, सुकोमल और सुकुमार अंगोंको संचालित कर, कोकिल-कंठोंसे स्वर-लहरी तरंगित कर दर्शक-मंडलीको मंत्र-मूढ़ करने लगीं। डाक्टर साहब यह दृश्य देखकर, इंद्रपुरीमें भी अप्राप्य मधुर गान सुनकर शायद इस लोकमें नहीं थे। उनका मुग्ध होना तो स्वाभाविक ही था। पर मैं भी इन नवेली परियोंके सुकुमार हृदयोंकी उड़ानसे अनमनी और उदास हो गई। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मैं युवावस्थामें पदार्पण करनेके पहले ही जवानीकी सभी उमंगें खो चुकी हूँ। आज पहली बार मुझे मालूम हुआ कि जिन उमंगोंके कारण मैं अपनेको युवती समझती थी वे अत्यंत तुच्छ

और अकिंचित्कर हैं। आज मेरी आँखोंके सामने अनंत-यौवन-संपन्न परियोंका वास्तविक लोक उद्घाटित हो गया था, और मैं भाई-बहन माता-पिता और डाक्टर साहबकी समस्त चिंताओंको तिलांजलि देकर अकेली उस रंग-उमंगमय लोकमें विचरना चाहती थी।

गाना बंद हुआ। दुबारा गाए जानेके लिये तालियाँ पड़ीं। फिर वही गीत गाया गया। फिर मेरे मनको उसी पूर्व उन्मादने आ घेरा। मैंने उसी बेहोशीकी हालतमें डाक्टर साहबका हाथ पकड़ लिया। डाक्टर साहब भी शायद अज्ञात ईश्वरीय तरंगोंसे प्रेरित होकर इसके लिये पहलेसे ही तैयार थे। उन्होंने प्रतिरोध करके अपना हाथ नहीं छुड़ाया, केवल एक बार सतृष्ण और स्निग्ध आँखोंसे मुझे ताककर उन्होंने अपनी दृष्टि फेर ली।

गाना समाप्त हुआ। उसके समाप्त होते ही मेरा नशा उतर गया। इतना भयंकर तूफ़ान मेरे मनमें उठा था, और वह इतनी जल्दी समाप्त हो गया! चैत और वैसाखके महीनेमें अक्सर देखा जाता है कि आँधी और तूफ़ानके भयंकर वेगसे आसमानमें प्रलयंकर बादल छा जाते हैं, बिजलीकी कड़कड़ाहटके साथ पृथ्वीको बहा ले जानेवाली धाराएँ बरसने लगती हैं। ऐसा जान पड़ने लगता है कि अब पृथ्वी-सुंदरी लाज-शरम सब बिसारकर, अपनी संततिकी माया छोड़कर, उन्मादिनी बनकर अकेली अनंतकी ओर बही चली जाती है, अब कभी लौटकर न आवेगी। हाय माता! तुम्हारा स्वप्न, तुम्हारा उन्मादक और उत्तेजक मोह क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है और फिर तुम संतानके पास लौटकर, सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशमें सुमधुर लज्जासे रंजित, और सुमंद वायुके ताड़नसे वृक्षके पत्रों द्वारा कंपित होकर अपनी पूर्व उत्तेजनाके कारण संकुचित हो जाती हो।

ठीक यही हाल मेरा भी था। उस क्षणिक पर भीषण उमंगसे उत्तेजित होनेके कारण मैंने डाक्टर साहबका हाथ पकड़ लिया था। गाना समाप्त होते ही जब नशा उतर गया तो तत्काल मैंने उनका हाथ छोड़ दिया और लज्जाके कारण धरती फाड़कर उसमें समा जानेकी इच्छा हुई।

खेल आरंभ हुआ। उत्तररामचरित खेला जा रहा था। जो युवतियाँ राम और लक्ष्मणका वेष धारणकर रंगमंचमें विराजमान थीं उनकी नपुंसकता देखकर मेरे हृदयमें अश्रद्धा उत्पन्न हो गई। जब राम महाशय अपनी जनानी आवाजसे नखरेके साथ नकियाकर सीताको 'प्रिये' कहकर पुकारते थे, तो मेरा जी घृणासे मचल-मचल उठता था। मैं जानती हूँ कि कई पुरुष ऐसे होते हैं जो स्त्रीका पार्ट बड़ी सुंदरतासे खेल सकते हैं। इसका कारण संभवतः यह है कि दुःखिनी स्त्रीके उन्नत आदर्शके प्रति पुरुषके हृदयमें विशेष श्रद्धा वर्तमान रहती है। पर पुरुषके उन्नत आदर्शकी कल्पना ही अभी तक स्त्री-जाति ठीक तरहसे नहीं कर पाई है। इसलिये संसारकी कोई भी स्त्री पुरुषका पार्ट खेल सकती है, इस बातपर मैं विश्वास नहीं कर सकती। काकाकी भी यही धारणा थी।

मूल नाटकके खेलमें कोई विशेषता नहीं थी। इसलिये मैं उसे देखकर उकता गई थी। पर बीच-बीचमें विना किसी कारणके परियोंका नाच दिखलाया जा रहा था और नाचके साथ उनका गाना भी चल रहा था। यह दृश्य मेरे लिये अत्यंत उत्तेजक और उन्मादक था। परियोंका नाच-गान आरंभ होते ही मैं बिल्कुल बेचैन और आपेसे बाहर हो जा रही थी। कितना ही मैं अपना मन रोकती थी पर किसी तरह भी सफल नहीं होती थी। अंतिम बार 'ड्रॉप सीन' गिरनेके पहले जो नाच हुआ वह ऐसा सम्मोहक और आकर्षक था कि मेरी नसोंमें बड़ी तेज़ीसे रक्त प्रवाहित होने लगा और उत्तेजनाके कारण सिरमें झनझनाहट पैदा

हो गई। मैं रह न सकी और अर्द्धमूर्च्छित-सी होकर बेबस डाक्टर साहबके कंधेके सहारे लेट गई। उस भरी महफ़िलमें लाज-भरम सब खोकर मैंने अर्द्धचेतन अवस्थामें दोनों हाथोंसे उनका गला जकड़ लिया।

पर्दा गिरा। खेल समाप्त हुआ। डाक्टर साहब मुझे जगाकर बोले—"लज्जा, चलो, सब चलने लगे हैं।"

आज पहली बार उन्होंने मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा था। मैं उनका हाथ पकड़कर काँपती हुई उठ खड़ी हुई। उनका हाथ पकड़नेमें मैं अपना गौरव समझने लगी थी।

६

मोटरमें जब चढ़ बैठी तो उसी उन्मादावस्थामें उन्हें जकड़े रही। मनमें कहने लगी—"प्यारे, मुझे घर मत ले जाओ! सीधे मौतके घर ले चलो। आजसे मेरा घरसे सब संबंध टूट गया है। काका, अम्माँ, राजू, लीला, मैं किसीके पास अब नहीं जाना चाहती और वे भी अब मुझे नहीं चाहेंगे। आजकी उन्मादिनी रात्रिमें केवल तुम्हारे अंगके विद्युत्-स्पर्शसे मूर्च्छित होकर मरनेके लिये ही भगवानने मुझे आदेश दिया है। मुझे मौतकी गोदमें ले जाकर छोड़ दो!"

स्तब्ध रात्रिके उस विजन पथमें मौतका बिगुल बजाकर मोटर बड़े वेगसे आगे बढ़ी। उज्ज्वल प्रकाशकी दो सुदूर-प्रसारित रेखाएँ उस मृत्यु-गामी रथको यमलोकका मार्ग दिखला रही थीं। हर्ष उन्माद और तीक्ष्ण वेदनासे पीड़ित होकर मैं डाक्टर साहबकी छातीमें अपना मुँह रखकर बिलख-बिलखकर सिसक-सिसककर बेअख्तियार रोने लगी। डाक्टर साहबका घन-घन उष्ण निःश्वास मेरे सिरके बालोंको आंदोलित कर रहा

था। कह नहीं सकती कि शोफ़रको मेरे रोनेका हाल मालूम हुआ या नहीं।

थोड़ी देरमें मोटर हमारे भवनके फाटकके पास आकर उसीकी ओर मुड़ी। मैं अबतक समझे थी कि सचमुच मौतके ही द्वारकी ओर जा रही हूँ। फाटकके भीतर जब मोटर घुसी तो मेरा मोह भंग होने लगा, और प्रचंड आँधीके समय जब नाव मझधारमें बहकर डाँवाडोल होने लगती है, और उस समय दुविधामें पड़े यात्रियोंके दिलकी जो हालत होती है वही मेरी भी हुई। उस समय मेरे पास यदि कटारी होती तो मैं क़सम खाकर कह सकती हूँ कि उसी दम अपनी छातीमें भोंक देती। ऐसे भीषण उन्मादका अंतिम परिणाम यह हुआ है कि मैं साधारण अवस्थाकी तरह अपने घरको वापस चली आई! चाहिए तो यह था कि इस अँधेरी रातमें मैं किसी अँधेरे चट्टानसे टकराकर चकनाचूर हो जाती, किसी अँधेरी, भयावनी गुफामें धँसकर मर जाती, किसी उत्ताल तरंग-माला-समाकुल भीषण समुद्रके काले-काले जलमें फाँद पड़ती, तब जाकर मेरे हृदयकी उत्कट वासना शांत होती। पर ऐसा न होकर मुझे नित्यकी तरह शांत अवस्थामें अपने कमरेमें जाकर सोनेकी तैयारी करनी पड़ी! क्या इससे अधिक शोचनीय अवस्थाकी कल्पना भी की जा सकती है?

मेरे कमरेकी बत्ती जली हुई थी। लीला शायद आज अम्माँके साथ सो रही थी। डाक्टर साहब मेरे कमरेतक मुझे पहुँचाने आए थे। मेरी हालत देखकर वह बहुत घबराए-से जान पड़ते थे। कमरेमें पहुँचनेपर बोले—"लज्जा, शांत होकर सो जाओ। दिमाग़में बहुत 'स्ट्रेन' पड़नेसे तुम दुबारा बीमार पड़ जाओगी और ऐसा होना बहुत ख़तरनाक है।"

मैंने अपनी उन्माद-भरी दृष्टिसे उनकी ओर ताका। वह अधिक घबरा गए। कुछ देर तक भ्रांत भावसे ताकते रहे, फिर "मैं चला" कहकर मुँह फेरकर चल दिए।

चारों तरफ़ सब लोग निस्तब्ध होकर सो रहे थे। कहींसे किसीके खकारने या खाँसनेकी आवाज़ भी नहीं सुनाई देती थी। उस भयंकर रात्रिमें उस अवस्थामें मैं अकेली अपने कमरेमें खड़ी थी। अकस्मात् एक प्रचंड भीतिके भावने मुझे धर दबाया। मेरे पैर उसी हालतमें ज़मीनपर जकड़ गए और मैं उन्हें बिलकुल न हिला सकी। ज़ोरसे चिल्लानेकी इच्छा हुई, पर किसी कारणसे चिल्ला न सकी। बड़ी मुश्किलसे, प्रबल चेष्टा करके मैं पलँगपर चढ़ बैठी। पलँगपर चढ़नेसे स्प्रिंगके दबनेके कारण जो आवाज़ हुई उससे काँप उठी। भयके कारण मुझे कपड़े बदलकर, सोनेके समयकी पोशाक पहननेकी हिम्मत भी नहीं हुई। उन्हीं कपड़ोंको लेकर कंबल ओढ़कर लेट गई। सिरकी नसें बड़े ज़ोरोंसे झनझना रही थीं, दिल बेतहाशा उछल रहा था।

बहुत देरके बाद जब मेरी अवस्था कुछ शांत हुई तो, न जाने क्यों, मुझे याद आया कि राजू और लीला दस बजे रातसे इस समय तक शांत और निरुद्वेग होकर सोए हुए हैं।

७

दूसरे दिन डाक्टर साहब किसी कारणसे नहीं आए। मैं दिन-भर बड़ी उत्सुकतासे उनकी बाट जोहती रही। आज मुझे उनकी बड़ी आवश्यकता थी। अपने जीवनके प्रथम स्खलनके बाद मैं और किसी दूसरे व्यक्तिके सहारेकी आशा नहीं कर सकती थी। मेरी यह

हीनता केवल उन्हींके साथ मिलकर सुख-दुःखकी बातें करनेसे मिट सकती थी। पर वह किसी तरह नहीं आए। जिनके कारण अपने प्यारे भाईकी आँखोंमें गिरना मैंने स्वीकार किया वह मेरे जीवनकी इस विकट स्थितिमें, इस नाजुक हालतमें क्या मुझे त्याग देना चाहते हैं?—इस भयंकर विचारसे मेरे रोंएँ खड़े होने लगे। रातके जागरणसे मेरी आँखें झप रही थीं। मैं पलँगपर लेटे-लेटे बीच-बीचमें झपकियाँ लेती जाती थी और फिर इस आशंकासे हड़बड़ाकर उठ बैठती थी कि मुझे सोते देखकर कहीं डाक्टर साहब वापस न चले जायँ। नौकरसे पूछती जाती थी कि डाक्टर साहब आकर चले तो नहीं गए? बार-बार इसी एक प्रश्नसे तंग आकर वह आख़िर रह न सका। बोला—"क्यों बीबी, तुम नाहक प्राण खाती हो? अगर आए होते तो क्या हम तुम्हें जगा न देते? हमें मालूम है कि उनके बिना तुम्हारे प्राण कैसे सूखे जाते हैं। रात-भर जागरण किए बैठी हो, बेफिकिर सो क्यों नहीं जातीं! उनकी फिकिर तुम्हारी ही तरह हमें भी लगी है।"

यह नौकर बुड्ढा था और बड़ा पुराना था। उसने मुझे अपनी गोदमें खेला रक्खा था इसलिये उसकी बात सह गई। नहीं तो यदि कोई दूसरा नौकर होता तो उसी दम काकासे कहके उसे निकलवा देती। मेरे कर्मोंका ही दोष था, इसलिये मन मारकर सबकी बोली-ठोली सह लिया करती थी।

मैं सोचने लगी कि डाक्टर साहबसे हेलमेल बढ़ाना ऐसा कौन भारी अपराध है कि उसकी वजह घर-भरके लोग मेरे खिलाफ़ हो उठे हैं! यह स्पष्ट था कि काका भी इस बातसे विशेष प्रसन्न नहीं थे। यह होनेपर भी उन्होंने मुझे प्यार करना नहीं छोड़ा था। पर राजूने तो एकदम विद्रोहकी ही घोषणा कर दी थी। वह मेरे साथ अब बातें तक न

करता था। उसका यह विद्वेष कैसा अन्यायपूर्ण था! किसी युवती कुमारीका किसी विशेष पुरुषको चाहना बिलकुल स्वाभाविक है और सामाजिक नियमोंके अनुकूल भी है। यह कौन अंधेरकी बात है! यह भी नहीं कहा जा सकता कि राजू नासमझ और बुद्धिहीन था। उसके समान समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति मुझे कोई नहीं दिखलाई दिया था। यही कारण था कि उसका अमूलक और अकारण विद्वेष मुझे और भी अधिक खटक रहा था और मेरे कलेजेको अत्यंत निष्ठुरताके साथ आरीकी तरह चीर रहा था।

"राजू, भैया मेरे, मुझे क्षमा करो! एक प्याला जहरका लाकर मुझे पिला जाओ! मेरी और कोई दूसरी गति नहीं है।" मन-ही-मन यह कहकर मैं पछाड़ खाकर, औंधे होकर तकिएके ऊपर सिर रखकर लेट गई और रोने लगी।

दीनोंकी टेर सुननेवाले दीनदयालु भगवानकी तरह राजूको न मालूम कैसे मेरी टेर सुनाई दी। अचानक मेरे कमरेमें आकर उसने पुकारा—"दीदी!" कैसी मीठी, कैसे मधुर स्नेहसे भरी उसकी आवाज़ थी! मैं क्षण-भरके लिये पुलकित और रोमांचित होकर मूर्च्छित-सी रह गई। मन-ही-मन उसकी बलैया लेती हुई हड़बड़ाकर उठ बैठी। आँखें पोंछ-कर अनजान-सी बनकर बोली—"कौन? राजू? क्या बात है?"

मेरी आँखोंमें आँसूके दाग़ शायद अभी तक वैसे ही बने थे। पोंछने-पर भी नहीं मिटे थे। मेरी ओर ताकनेपर राजूकी आँखें भी करुणासे म्लान हो गईं।

उसने पूछा—"क्या तबियत कुछ ख़राब है?"

"नहीं, कुछ ख़राब नहीं। रातको जगे रहनेके सबब कुछ सुस्ती आ गई थी।"

" तो चलो, कहीं सैरको चले चलें । सब सुस्ती दूर हो जायगी । "

" कहाँ चलोगे ? "

" जिधरको तुम्हारी इच्छा है । "

" मेरी इच्छा किसी ख़ास जगहके लिये नहीं है । "

" तो चौककी तरफ़ चलें । "

" अच्छी बात है, " कहकर मैं चारपाईसे नीचे उतर पड़ी और दूसरे कमरेमें जाकर कपड़े बदलने लगी । कपड़े बदलते-बदलते मैं यही सोचने लगी कि आज राजूकी विशेष कृपाका कारण क्या है । मुझे पूरा विश्वास था कि यदि डाक्टर साहब मेरे साथ होते तो वह कदापि मेरे साथ चलनेको राज़ी न होता । आज डाक्टर साहब नहीं थे, और मैं अकेली थी । शायद इसीलिये मुझपर तरस खाकर वह मुझे बुलाने आया था ।

कपड़े बदलकर, बाल सँवारकर, सजधजकर मैं बाहर आई । लीला भी चलनेके लिये तैयार होकर बाहर खड़ी थी ।

राजूने कहा—" फ़िटन तैयार है । उसीमें जाना होगा । मेरी मोटर कोई ले गया है । दूसरी कोई मोटर मुझे पसंद नहीं । "

८

फ़िटन कंपनी बाग़के रास्तेसे होकर जाने लगी । राजू और मैं अपनी-अपनी चिंताओंमें मग्न थे । हम दोनोंमेंसे किसीके मनमें बातें करनेकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती थी । पर लीला बड़ी चंचल और प्रसन्नचित्त लड़की थी । वह बीच-बीचमें अपने उद्भट प्रश्नोंसे हम लोगोंको तंग कर रही थी ।

जब हम लोग रेलवे लाइनके नीचे, कृत्रिम 'टनेल'के पास पहुँचे तो राजू बोला—"अब तुमसे बात क्या छिपाऊँ, दीदी! मैं तुम दोनोंको अपने एक मित्रके यहाँ लिए जाता हूँ। अपने मित्रकी अम्माँको मैं भी अम्माँ कहता हूँ। वह बहुत दिनोंसे तुम दोनोंको लिवा लानेके लिये जिद करती थीं। आज तुम्हें उन्हींके पास लिए चलता हूँ।"

राजूके मित्रके साथ परिचय होनेमें मुझे कोई एतराज़ नहीं था।

हमारी फिटन हेवेट रोडकी तरफ़ मुड़ी। कुछ दूर आगे बढ़कर एक मकानके पास राजूने गाड़ीको रोक लेनेकी आज्ञा दी।

दूकानके लगे-लगे एक तंग फाटक था। हम लोग उसके भीतर घुसे। भीतर मकानके नीचे नालीसे होकर गंदा पानी बह रहा था। बड़ी बदबू आती थी। मैंने रूमालसे नाक ढक ली। मुझे मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि राजू हमें कहाँ ले आया है। पर मुझमें उस समय कुछ बोलनेकी शक्ति नहीं थी। मैंने आज अपने जीवनमें पहली बार बाज़ारके भीतरका मकान देखा था। इसलिये हैरतमें थी।

मकानके सबसे नीचे जो कमरा था उसके पास जाकर राजूने पुकारा—"भोला!"

कोई आवाज़ नहीं सुनाई दी। चारों तरफ़की बड़ी-बड़ी दीवालोंसे मकान ढका था, इसलिये वहाँ प्रकाश अच्छी तरह नहीं प्रवेश कर सकता था। संध्याका समय होनेके कारण इस समय और भी अधिक अँधेर हो रहा था। बरामदेके भीतर जाकर जब वह उस कमरेके बिलकुल समीप ही गया तो मालूम हुआ कि वहाँ ताला लगा है।

भोलाके मिलनेकी आशा छोड़कर वह हमें सीढ़ियोंके रास्तेसे होकर ऊपर ले गया। ऊपर दरवाज़ेके पास पहुँचकर वह पुकारने लगा—"'अम्माँ! दीदी!"

भीतरसे युवती-कंठकी मीठी आवाज़ सुनाई दी—" हाँ। कौन है? राजू? "

राजू बोला—" हाँ, मैं ही हूँ। किवाड़ खोलो। "

राजूकी यह आश्चर्यमयी दीदी कैसी है, यह जाननेके लिये उत्सुक होकर मैं अधैर्यके साथ खड़ी रही।

खट-से दरवाज़ा खुला। मैंने देखा कि चौबीस-पच्चीस सालकी एक युवती दाहिने हाथमें प्रायः दो सालका एक बच्चा पकड़े, लाल रंगमें रंगे हुए खद्दरकी एक अर्द्ध-मलिन साड़ी पहने, अपनी शांत और स्तिमित आँखोंसे आश्चर्यपूर्वक मुझे और लीलाको ताकती हुई वहाँपर खड़ी है। उसके मुँहका रंग गेहुँआ था—उसमें उज्ज्वलता नहीं पाई जाती थी। पर वह कैसा प्यारा मुँह था!

मैं स्पष्ट देख रही थी कि मेरा और लीलाका ठाठ देखकर वह चकित रह गई थी और शायद इसी कारण उसे हमें भीतर बुलानेकी हिम्मत नहीं होती थी।

राजूने कहा—" इन दोनोंको देखकर क्या घबरा गई हो दीदी! चलो, इन्हें भीतर ले चलो! "

" आओ बहना, " कहके उसने पहले मेरा हाथ पकड़ा और फिर लीलाका। मेरा उत्साह पहले ही ठंडा पड़ गया था। अब बिलकुल ही जाता रहा।

दो अँधेरे कमरे पार करके हम लोग एक तीसरे कमरेमें आए। यह कमरा बाज़ारकी तरफ़ था। वहाँ एक अधेड़ स्त्रीके पास बैठकर दो बच्चे लीलाकी उम्रकी एक लड़कीके साथ खेल रहे थे।

राजूने उस अधेड़ स्त्रीको प्रणाम किया और कहा—" अम्माँ, आज अपनी बहनोंको आपके दर्शनके लिये ले आया हूँ। "

राजूकी अम्माँने कहा—" आओ बेटा, बैठो। बहनोंको ले आए, अच्छा किया। आओ बेटी, सामने आओ, जरा तुम्हारा मुँह तो देखूँ।"

संकोच और घृणासे मेरा सारा शरीर जर्जरित हो रहा था। मुझे राजूपर क्रोध आ रहा था। क्यों वह मुझे संध्याके अंधकारमें ऐसे अज्ञात स्थानमें ले आया? मुझे डर मालूम हो रहा था।

फिर भी मैंने मन मारकर राजूकी 'अम्माँ'को प्रणाम किया। लीलाने मेरा अनुकरण किया।

" कैसा सुंदर चाँद-सा मुखड़ा है!" कहकर वह बड़े स्नेहसे मेरे गालोंपर हाथ फेरने लगीं। मैं नाक-भौंह सिकोड़कर, मन-ही-मन मचल-कर रह गई। वह बोलीं—" तुम राजूकी ही बहन हो, इसमें संदेह नहीं।"

राजू खिलखिलाकर हँस पड़ा।

राजूकी 'दीदी'ने लालटेन जलाई। उजाला देखकर बच्चे उछल पड़े! इस अंधकार घरमें प्रकाशका कितना मूल्य था यह बात मैं घरमें प्रवेश करते ही समझ गई थी। 'दीदी'की गोदमें जो दो सालका बच्चा था वह बत्ती जलते ही उसकी तरफ़ दोनों हाथ जोड़कर उमंगमें आकर बोला—" जै!" उसे शायद ऐसा करना सिखलाया गया था।

यह सब तो ठीक था, पर मैं एक बातके लिये बड़ी दुबिधामें पड़ गई थी। उस कमरेमें बैठनेके लिये मुझे कहीं एक कुर्सी भी नहीं दिख-लाई दी। नीचे फ़र्शमें एक मैली दरी बिछी हुई थी और उसके ऊपर दो छोटे-छोटे पुराने क़ालीन पड़े हुए थे। राजू बड़े आरामके साथ क़ालीनके ऊपर बैठ गया था। पर मैं नीचे कैसे बैठती! हाय राजू! तुम कबके बैरका बदला लेने मुझे यहाँ ले आए! अपने जीवनमें आज तक मैं

कभी फ़र्शपर नहीं बैठी थी । लीलाका भी यही हाल था । पर वह राजूकी कट्टर भक्त थी । राजूको नीचे बैठे देखकर उसे नीचे बैठनेमें तनिक भी संकोच नहीं हुआ । वह उसीके बगलमें बैठने लगी । पर राजूने न मालूम क्या सोचा, उसे नीचे नहीं बैठने दिया । कमरेके कोनेमें एक चारपाई पड़ी थी । उसने लीलाका हाथ पकड़कर उसीके ऊपर बैठा दिया और मुझसे भी उसीके ऊपर बैठनेको कहा । यद्यपि चारपाईपरका बिस्तर साफ़ सुथरा नहीं था, तथापि फ़र्शकी अपेक्षा उसीपर बैठना मैंने अच्छा समझा ।

लीलाकी उम्रकी जो लड़की वहाँपर बैठी थी, वह चुपके-से भीतर गई और एक पुरानी, टूटी हुई कुर्सी लाकर राजूसे बोली—" भैया, तुम इसपर बैठ जाओ । "

पर राजू बड़ा ज़िद्दी आदमी था । फ़र्शपरसे हटा नहीं ।

९

बूढ़ी अम्माँने मुझसे कहा—" मैं जानती हूँ, बेटी, कि तुम रंग-महलमें रहती हो । भगवानकी दयासे तुम्हारे पास चार पदार्थ मौजूद हैं । सब तरफ़से तुम भरी-पूरी हो । पर यह होनेपर भी गरीब लोगोंकी कुटीमें पाँव रखनेसे भगवान कभी तुमसे असंतुष्ट नहीं होंगे । दुनियामें बड़े लोग कितने कम होते हैं ! सारी सृष्टि दरिद्रोंके ही भारसे दबी हुई है । इस हालतमें तुम कहाँ तक दीन-हीन लोगोंसे बचकर, सँभल-सँभलकर चलोगी ? किसी-न-किसी समय उनकी गंदगीसे तुम्हारे बेदाग पाँवोंमें मैल लगता ही । आज श्रीगणेश इसी घरसे हुआ समझो ।"

किसी बातको समझानेका यह ढंग बिलकुल नया था । अत्यंत संकुचित होकर मैं बोली—" नहीं अम्माँ, मैं तो आपके दर्शनसे अपना सौभाग्य समझती हूँ । "

" सौभाग्यकी कोई बात नहीं है, बेटी। यह मेरा ही सौभाग्य है कि तुम्हारा चाँद-सा प्यारा मुखड़ा देख पाई हूँ। राजूसे कबसे कहती थी। आज आख़िर वह दोनों बहनोंको ले ही आया।"

हमारे भीतर आनेके समय जो दो छोटे-छोटे बच्चे खेल रहे थे वे राजूकी नई दीदीका अंचल पकड़कर उसीके साथ खड़े थे और आश्चर्य-चकित दृष्टिसे मुझे और लीलाको ताक रहे थे।

राजूने अपने जेबसे विलायती मिठाईकी एक पुड़िया निकालकर दोनोंको अपने पास बुलाया और दोनोंको गोदमें बैठाकर बड़े लाड़से उन्हें अपने ही हाथसे मिठाई खिलाने लगा। पर उन लड़कोंकी विस्मित आँखें हमारी ही ओर लगी थीं। मिठाई खाते-खाते वे दोनों एकटक होकर हम ताक रहे थे।

बड़े लड़केने बड़ी हिम्मत बाँधकर एक बार राजूसे पूछा—" ये कौन हैं, भैया?"

राजूने कहा—" दीदी।"

" दोनों!"

" हाँ।"

बूढ़ी अम्माँने कहा—" दीनू, रामू, जाओ, दोनोंको प्रणाम कर आओ।"

दोनोंने तत्काल उठकर हमें प्रणाम किया। मैं क्या कहकर उन्हें आशीर्वाद दूँ, कुछ समझमें न आया। चाहिए तो यह था कि दोनोंका हाथ पकड़कर मैं उनसे लाड़की दो-चार बातें करती। पर मेरे मनमें दोनोंके प्रति अकारण घृणा पैदा हो गई थी। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि राजूने कैसे विना किसी हिचकिचाहटके उन्हें अपनी गोदमें बैठा

लिया था । दोनोंके कपड़े यद्यपि धुले हुए और साफ़-सुथरे थे, पर उनमें सौष्ठव नहीं था । दोनोंके चेहरोंसे भी बोदापन टपकता था ।

उनके प्रणामके उत्तरमें मैं केवल मुस्कुराई । बच्चोंके अंतस्तलमें भी शायद अपमानकी एक अस्फुट, अस्पष्ट, अनुभूति वर्त्तमान रहती है । अपने प्रणामका स्नेहपूर्ण उत्तर न पानेपर दोनों कुछ देर तक खड़े-खड़े अत्यंत विरस भावसे हमारी ओर ताकते रहे ।

जिस युवतीने दरवाज़ा खोला था वह अचानक गंभीर स्वरमें बोली—" दीनू, रामू, इधर चले आओ ! "

दोनों दौड़कर उसके पास चले गए । शायद वह दोनोंकी माँ थी । मैंने उसकी ओर ताका । देखा कि पुत्रोंके अपमानसे माताका अभिमान प्रचंड तीव्रताके साथ उसकी आँखोंमें झलक रहा है । मैं डर गई और हौलदिलीके कारण मेरा कलेजा धड़कने लगा । मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे मैंने कोई घोर अनर्थका काम कर डाला है । उस युवतीके मुँहके तात्कालिक तेजसे मेरी आँखें वास्तवमें चौंधिया गईं । अब तक उसके मुँहसे एक बात भी नहीं निकली थी । पर इस एक अत्यंत तुच्छ और साधारण बातसे उसका सारा अंतःकरण मेरी आँखोंके सामने स्पष्ट प्रभासित होने लगा । मैं उसी दम समझ गई कि राजू क्यों इस तेजोमयी माताके पुत्रोंको प्यार करता है और अपने हृदयकी संकीर्णतापर मुझे दुःख हुआ । पर यह होनेपर भी दरिद्र घरकी इस युवतीका वह दर्प मुझे अत्यंत असह्य और कड़वा जान पड़ा ।

राजूको भी शायद रंगढंग अच्छे नहीं दिखलाई दिए । इसलिये उसने बूढ़ी अम्माँकी ओर मुँह करके कहा—" अच्छा अम्माँ, अब चलें । भोला अभी तक नहीं आया, उससे कल मिल लूँगा । "

अम्माँने कहा—"क्या करूँ बेटा, लाचार हूँ। तुम्हारी बहनोंको यहाँ बुलाया, पर उन्हें कुछ भी खिला-पिला न सकी। इस दरिद्र घरकी बनी हुई क्या चीज़ उन्हें पसंद आ सकती है! इसलिये कुछ कह न सकी।"

"वाह, यह भी कोई बात है अम्माँ! तुम्हारे हाथका प्रसाद ये दोनों कहाँ पा सकतीं हैं? मैं तो रोज़ ही तुम्हारा प्रसाद पाकर अपनेको धन्य समझता हूँ। पर आज देर हो गई है। फिर किसी दिन इन्हें लेता आऊँगा।"

"ज़रूर लेते आना, बबुआ!" कहकर अम्माँने उसके गालोंपर हाथ फेरा और लीलाके और मेरे सिरपर हाथ रखकर हमें आशीर्वाद दिया।

जब हम लोग जाने लगे तो बच्चोंकी माता—राजूकी दीदी—उस तेजस्विनी युवतीने मेरा हाथ पकड़कर मुझसे कहा—"यहाँ आनेपर तुम्हें जो कुछ कष्ट हुआ उसे भूल जाना बहन!" इस समय कैसा स्निग्ध और करुण उसका कंठ था! मुझसे कुछ कहते न बन पड़ा। पर चुप रहना घोर नीचता है, यह सोचकर मैं बोली—"कष्ट किस बातका दीदी! तुम लोगोंका प्यार पाकर मैं अपनेको आज कृतार्थ समझती हूँ।"

जो लड़की लीलाकी समवयस्का थी वह लालटेन हाथमें पकड़कर हमें रास्ता दिखाने चली। सीढ़ियोंसे नीचे उतरकर जब हम लोग बाहर फाटकके पास पहुँचे तो वह अपने मुँहमें अत्यंत मधुर हास्यकी झलक दिखलाकर बड़े मीठे स्वरमें स्नेहपूर्वक बोली—"राजू भैया, कल तुम्हें ज़रूर आना होगा।"

उसकी बातसे ऐसा जान पड़ा कि राजूपर उसका विशेष अधिकार है। तेरह–चौदह वर्षकी लड़कीके मुँहसे स्नेहसे पूर्ण और अधिकारसे भरी

वह वाणी सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गई। इस समय तक मैं उसके प्रति उदासीन थी। पर अब मैंने लालटेनके प्रकाशमें ग़ौरसे उसे देखा। उसकी दो सुंदर, उज्वल आँखोंमें स्नेह, करुणा, हास्य और बुद्धिमत्ताका अपूर्व मिश्रण वर्तमान था।

राजूने कहा—" ज़रूर आऊँगा, बहना! अब तुम लौट जाओ।"

१०

घर पहुँचने तक रास्ते-भर मैं केवल यही सोचती रही कि राजूने संसारके नाटकका कैसा अनोखा दृश्य आज मुझे दिखलाया है! कभी मेरे मनमें घृणा उत्पन्न होती थी, कभी एक अपूर्व, अज्ञात चेतना। बूढ़ी अम्मॉंने कहा था कि संसारमें 'बड़े लोग' बहुत कम होते हैं—सारी सृष्टि केवल उन्हीं लोगोंके समान दरिद्रोंके भारसे दबी है। मैंने सोचा कि यदि यह बात सच है तो संसारसे मेरा परिचय कितना अल्प है! पर कुछ भी हो, राजूने क्या समझकर इस दरिद्र परिवारसे नाता जोड़ा है? वह क्या अपने जीवनमें किसी 'रोमेंस' की इच्छा रखता है, या वास्तवमें दरिद्रताको अपनाना चाहता है? मुझे याद आया कि वह बिना किसी झिझकके नीचे फर्शपर बैठ गया था और उसने बड़े लाड़से दोनों बच्चोंको गोदमें बैठा लिया था। यह तो किसी तरह भी 'रोमेंस'-प्रिय व्यक्तिकी ख़ामख़याली नहीं कही जा सकती। उन लोगोंके साथ बिना एकप्राण हुए कोई ऐसा नहीं कर सकता। भोगैश्वर्यसे पूर्ण घरमें लालित होकर, रात-दिन विलासिताकी तड़क-भड़कमें अपना जीवन बिताकर वह कैसे अपने हृदयमें बद्ध संस्कारोंको उखाड़कर फेंकनेमें समर्थ हुआ! और वह भी इतनी छोटी अवस्थामें! उसकी अवस्था इस समय केवल सत्रह वर्षकी थी। दुःख, आश्चर्य,

घृणा और श्रद्धाके भाव बारी-बारीसे मेरे हृदयमें उमड़ने लगे। आज मैं समझ गई हूँ कि भगवान्के दिए हुए विपुल जीवनकी स्वाभाविक वृत्तियोंका असली खेल दरिद्र गृहोंमें ही पाया जा सकता है। धनी और सभ्य समाजका तुच्छ शिष्टाचारपूर्ण जीवन कुछ निश्चित रेखाओंके भीतर नियम-बद्ध होकर चला करता है। इस जीवनके सुख-दुःख भी 'टाइम-टेबिल'में लिखे हुए, सुनिश्चित, नियमित और सीमा-बद्ध होते हैं। पर दरिद्र गृहका जीवन अनेकानेक उलटे-सीधे चक्रोंके फेरसे सुविस्तृत, प्रकृतिकी मूल शक्तिद्वारा परिचालित, आत्माके भीतरी पीड़नद्वारा निर्झरकी तरह उत्साहित और शांत करुणा तथा स्निग्ध वेदनासे ओसकी बूँदोंको झलकानेवाली विजन निशाकी तरह उन्मुक्त होता है। अनेक जन्मोंके संस्कारोंसे राजू इसी प्रकारके वास्तविक जीवनके लिये लालायित था। यह बात आज मुझे स्पष्ट विदित हो रही है। पर उस समय मैं उस जीवनका महत्त्व बहुत कम समझे हुए थी। इसलिये राजूकी ख़ाम-ख़यालीसे संतुष्ट नहीं थी।

पर लालटेनसे हमें रास्ता दिखानेवाली वह प्यारी लड़की! राजू उसे किस दृष्टिसे देखता है? यह नई भावना मेरे मनमें समाई। मैं जानती थी कि मेरी संगिनी और सहपाठिनी जितनी भी लड़कियोंसे उसका परिचय था उनके साथ वह अच्छी तरहसे बातें तक न करता था। पर इस दीन-हीन लड़कीका उसपर इतना अधिकार कैसे हो गया! यह कितने आश्चर्यकी बात थी, इसे केवल मैं ही समझ सकती हूँ।

और मातृगर्वसे गंभीर, संतानकी वेदनासे परिक्लांत वह तेजोमयी युवती! सत्रह वर्षकी अवस्थामें राजू उसके हृदयकी महत्तासे परिचित हो गया था और संतानका स्नेह भी इस छोटी अवस्थामें उसके हृदयमें

अस्फुट रूपसे परिस्फुट होने लगा था। अन्यथा क्यों वह इस युवती माताके हृदयकी वेदनाको अपनी श्रद्धांजलि प्रदान कर रहा था! पर मैं यद्यपि स्त्री थी, तथापि उन छोटे-छोटे बच्चोंको देखकर मेरे हृदयमें नामको भी चेतना उत्पन्न नहीं हुई। यह कितने बड़े आश्चर्यकी बात थी! 'सेल्यूलाइड' या गटा पार्चाकी बनी हुई एक खूबसूरत गुड़ियाको मैं जी-जानसे प्यार कर सकती थी, पर दरिद्रकी संतान उन दो बच्चोंके लिये मेरे मनमें असह्य घृणाका भाव उत्पन्न हो रहा था। एक ही ढंगसे, एक ही घरमें पले हुए हम दो भाई-बहनमें इतना बड़ा प्रभेद था।

आजका अद्भुत दृश्य देखकर मैं अपने सीमाबद्ध हृदयकी दुर्बलताओं-पर अच्छी तरहसे विचार करना चाहती थी, पर प्रबल चेष्टा करनेपर भी अपने अंतस्तलकी मूलगत जड़ताके कारण या अन्य किसी कारणसे उन्हीं दुर्बलताओंको हृदयमें इस तरह जकड़े रहनेकी इच्छा होती थी मानो वे मेरी जन्म-जन्मकी प्यारी सहचरियाँ थीं।

सोचते-सोचते मैं उकता गई और दिमागमें जोर पड़नेके कारण सिरमें दर्द होने लगा। गाड़ीके घोड़े बड़ी तेजीसे दौड़ रहे थे। एक लंबी साँस लेकर मैंने लीलाके मुँहपर दृष्टि डाली। कैसा भावहीन, अनु-भूतिहीन, चिंतारहित, आमोद-प्रिय वह मुँह था! जिस बालिकाने अपना स्नेहाधिकार प्रकट करके राजूसे कहा था कि कल तुम्हें जरूर आना होगा, उसके हृदयकी संयत तीव्रतासे क्या इस सरल-प्रकृति और बोदी लड़कीके निस्तेज चांचल्यकी कुछ भी तुलना हो सकती थी? मैं मनमें कहने लगी—"हाय प्यारी बहन! राजू हम दोनों बहनोंको कर्त्तव्यके काँटोंसे कंटकित जिस गहन मार्गकी ओर ढकेलना चाहता है उसमें चलनेका साहस और शक्ति हम कहाँसे लावें!"

११

घर आकर जब मैंने विलासिताके नाना उपकरणोंसे सुसज्जित अपने कमरेमें प्रवेश किया तो ऐसा जान पड़ा जैसे किसी अपरिचित दूरस्थित देशसे लौटकर मैं अपनी दुनियामें आ गई हूँ। दरिद्रता, दुःख और शोककी जो अप्रिय भावना मेरे मनमें गड़ गई थी वह किसी मायाके बलसे तिरोहित हो गई और काल्पनिक आनंदकी नई नई उमंगें मेरे मनमें हिलोरें लेने लगीं। नाटकके खेलके समय और उसके बाद जिस अनोखे नशेने मुझे धर दबाया था उसकी मधुर और उत्तेजक स्मृति फिर धीरे-धीरे जागरित होने लगी। फिर-से डाक्टर साहबकी रसी-ली, मद-भरी आँखें मेरे मानसमें झिलमिलाने लगीं। मैं अपनी कल्पना और वासनासे स्वयं झूमने लगी और मद-विह्वल होकर मधुर मूर्च्छाके विलाससे पलँगपर लेट गई। आँखें बंद करके अर्थहीन स्वप्नोंकी तरंगोंमें बहने लगी।

अचानक बाहर दरवाज़ेसे जादूसे भरा हुआ वही चिर-परिचित कंठ सुनाई दिया—" क्या मुझे भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा है ? "

भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा ? प्राणप्यारे ! तुम्हें क्या खबर नहीं कि मेरे भीतर तुम कबसे प्रवेश किए, अधिकार जमाए बैठे हो ! एक पलके लिये भी मैं तुम्हें हटने नहीं देती। जान-बूझकर फिर क्यों अनजान बनते हो ?

मैं उठ बैठी और बोली—" आइए कृपानिधान ! तशरीफ़ लाइए ! यह नया ढंग कबसे सीखा है ? "

मादक स्वप्नोंके रंगसे रँगे हुए मेरे मुखमें शायद आज कुछ विशेषता थी। डाक्टर साहब जब भीतर आए तो मुझे देखकर उनका चेहरा भी तमतमाने लगा।

जब वह बैठ गए तो मैंने कहा—"आज यह देर कैसी!"

बोले—"आज कई मरीज़ोंको देखना था। अभी जिस मरीज़को देखकर मैं आ रहा हूँ उसकी हालत ऐसी खराब है कि बिलकुल 'हॉरिबल' समझिए। मैं तुमसे उसका कुछ वर्णन नहीं कर सकता। तमाम बदनमें फोड़े हो गए हैं, चेहरा इतना सुस्त हो गया है कि मांसका कहीं पता नहीं चलता, फोड़ोंसे मवाद निकलता जाता है जिसके सबब बदबूसे वहाँपर मिनट भर नहीं रहा जाता, इधर-उधर करवटें नहीं बदल सकता, मलमूत्रके लिये उठ नहीं सकता, तिसपर मज़ा यह कि वह खानेके लिये रुचि बतलाता है, पर हजम नहीं कर सकता। घरवाले उसकी टहल करते-करते अब थककर उकता गए हैं। सब मनमें यही सोच रहे हैं कि उसके प्राण-पँखेरू उड़ जायँ तो तकलीफ़से बचे। पर यह बात कोई मुहसे नहीं निकाल सकता। मेरी समझमें नहीं आता कि उसके लिये क्या उपाय किया जाय। ऐसी हालतमें कोई दवा क्या असर कर सकती है! उसका कराहना ऐसा भयंकर मालूम होता है कि आतंक छा जाता है। उचित तो यह होता कि ज़हर देकर वह मार डाला जाता। पर मनमें झिझक पैदा होती है। तुम्हारी क्या राय है?"

मेरी राय? वर्णन सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए थे। इस हालतमें मैं राय क्या देती! तत्काल मेरे मनमें यह आशंका उत्पन्न हुई कि सब मनुष्योंके शरीरकी बनावट तो एक-सी ही होती है। जब किसी कारणसे इसी व्यक्तिकी तरह मुझे भी यही रोग हो गया तब मेरी क्या गति होगी? इस समय तो मैं अपने रूपके घमंडके मारे जमीनपर पाँव नहीं रखती। सर्वांगमें एसेंस छिड़ककर सोनेमें सुगंध उत्पन्न कर रही हूँ। जवानीकी उमंगमें आकर पुरुषोंको अपने वशमें करनेका भी दावा रखती हूँ। पर

जब, ईश्वर न करे, फोड़ोंके कारण मेरा शरीर विकृत हो जायगा, उनमेंसे मवाद निकलनेके कारण बदबूसे वहाँपर कोई खड़ा न रह सकेगा, निरतिशय पीड़ासे मैं कराहने लगूँगी तब कौन मुझे पूछेगा ? हाय मेरे भगवान ! मनुष्यका शरीर क्यों तुमने इतना सुंदर बनाया और जब सुंदर बनाया था तो क्यों ऐसी बुरी तरहसे उसका सत्यानाश हुआ करता है ?

सोचते-सोचते मेरा सारा शरीर जर्जरित होने लगा और मैं ऐसा अनुभव करने लगी जैसे अभी-अभी मेरे शरीरमें स्थान-स्थानपर फोड़े उत्पन्न होने लगे हैं। वहमके सबब बेबस होकर मैंने कहा—"यह कैसा लोमहर्षक वर्णन आपने सुनाया ! मुझे भी इसी रोगका वहम होने लगा है। कहीं मुझे भी यह बीमारी न हो जाय ! "

मेरी बात सुनकर डाक्टर साहब ठठाकर हँस पड़े। उनकी हँसीसे मेरा भय कुछ दूर हुआ। मैं फिर अपना ललित विलास व्यंजित करके मुस्कुराने लगी। हायरी मानव-हृदयकी चंचलता !

मैंने कहा—" नहीं डाक्टर साहब, आज सचमुच मेरी तबियत ख़राब है। जरा मेरी नाड़ी देखकर मालूम कीजिए। कितनी तेज़ चल रही है।" यह कहकर मैंने अपना हाथ आगेको बढ़ा ही तो दिया।

डाक्टर साहबके मनमें कोई झिझक उत्पन्न हुई या नहीं, कह नहीं सकती। पर उन्होंने एक बार मेरे मुँहकी ओर ताककर धीरेसे मेरा हाथ पकड़ लिया और कलाईके दो-तीन स्थानपर उँगलियाँ फेरकर, मेरे सारे शरीरमें रोमहर्ष और हृदयमें विचित्र धड़कन पैदा करते हुए एक निश्चित स्थानपर अपनी उँगलियाँ जमा लीं और वे बाँए हाथके 'रिस्ट-वाच' में 'टाइम' देखने लगे।

मिनट-भर देखकर बोले—" आपका 'पल्स-बीट' बिलकुल 'नॉर्मल' है। कह नहीं सकता कि किस वजहसे तुम्हारी तबियत ख़राब हो गई।"

मैंने कहा—" क्या बतलाऊँ डाक्टर साहब, मैं भी ठीक-ठीक नहीं बतला सकती कि कैसे मेरी तबियत ख़राब हो गई।"

राजूने आकर बड़े ज़ोरसे व्यंगके रूपमें कहा—" आदाबअर्ज़, डाक्टर साहब ! मिज़ाज-शरीफ़ ?"

मैंने सोचा कि यदि नाड़ी देखनेके समय राजू आया होता तो कैसा अंधेर न हो गया होता ! फिर सोचा—" राजू क्या हररोज़ हम दोनोंकी घातमें बैठा रहता है ? ठीक नियत समयपर क्यों मेरे कमरेमें पहुँच जाता है ?"

डाक्टर साहबने उत्तर दिया—" अरे साहब, मिज़ाज-शरीफ़के बाबत कुछ पूछिए मत। कल लड़कियोंका जो नाटक देखा, उसके कारण मिज़ाजकी हालत कुछ अजीब हो गई है।"

" क्यों साहब, हुआ क्या ?"

" क्या बतलाऊँ, नाज़नीन परियोंका नज़ाक़तसे भरा हुआ नाच देखकर और दिलको लुभानेवाला गाना सुनकर मैं कल रातसे आपेमें नहीं हूँ। तुमने ऐसा अच्छा मौक़ा हाथसे जाने दिया।"

मैंने साफ़ देखा कि असह्य लज्जासे राजूका सारा मुँह रँग गया। बहनके सामने भाईसे इस तरहकी बातें करना मार्जित रुचिके कितने विरुद्ध था, यह मोटी बात डाक्टर साहबकी बुद्धिमें नहीं समाई। और वह भाई भी राजूकी प्रकृतिका ! क्रोध और भयके कारण मेरा दिल ज़ोरोंसे धड़कने लगा।

नौकरने आकर कहा—" खाना तैयार है।"

हम लोग इस विकट संकटमय स्थितिसे बच गए। मैंने कहा—
"चलिए डाक्टर साहब, आज आपको हमारे ही साथ खाना होगा।"

विना किसी एतराजके वह बोले—"अच्छी बात है।"

१२

डाइनिंग टेबिलमें अम्माँ और काका हमारे इंतजारमें बैठे थे। डाक्टर साहबको देखकर अम्माँ उछल पड़ीं। पारस्परिक अभिवादनके बाद अम्माँने कहा—"आज बहुत दिनोंके बाद आपके साथ खानेका सुअवसर प्राप्त हुआ।" सभ्य लोगोंके साथ बोलनेमें अम्माँ शुद्ध संस्कृतके शब्दोंका प्रयोग करना पसंद करती थीं, यद्यपि उन्हें संस्कृतका बिलकुल भी बोध नहीं था।

राजू हमारे साथ नहीं आया था। नौकरके आनेपर काकाने कहा—
"रजनको बुलाओ।"

नौकरके चले जानेपर काकाने डाक्टर साहबसे पूछा—"कहिए, कल रातका 'प्ले' कैसा रहा? आपके पसंद आया या नहीं?"

उत्तरमें डाक्टर साहब मधुर लाजके साथ मुस्कुराए, फिर बोले—
"साहब, सच बात तो यह है कि लड़कियाँ विना लड़कोंकी सहायताके ऐसे कामोंमें कभी सफल नहीं हो सकतीं। हाँ, एक बात वहाँ जरूर देखने लायक थी। लड़कोंको स्त्रियोंका पार्ट खेलते मैंने अक्सर देखा है। पर कल जब मैंने लड़कियोंको पुरुषोंका पार्ट खेलते देखा तो यह नई बात मुझे बहुत पसंद आई। लड़कियोंकी यह चेष्टा सराहनीय थी।"

काका बोल उठे—"हॉरिबुल!"

हम सब चौंक पड़े।

डाक्टर साहबने पूछा—"क्यों साहब ?"

"जो लड़की मर्द बनकर स्टेजपर खड़ी हो सकती है, वह क्या नहीं कर सकती ! का न करइ अबला प्रबल ?"

"मुझे और अम्मौंको हँसी आ गई, पर डाक्टर साहबका मुँह गंभीर हो आया। बोले—"आपका यह 'सेंटिमेंट' न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। जब लड़के स्त्रियोंका पार्ट खेल सकते हैं तो लड़कियोंको क्या पुरुषोंका पार्ट खेलनेका अधिकार नहीं है ? क्यों इसे आप इतना भारी अपराध समझते हैं ?"

काकाका स्वभाव था कि वह अपनी किसी भी बातका विरोध नहीं सह सकते थे। अपनी हठ और अकड़बाज़ीके लिये वह प्रसिद्ध थे। उनकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। शेरकी तरह गरजकर बोले—"सेंटिमेंट ? आप सेंटिमेंटको क्यों इतना महत्त्वहीन समझते हैं ? युक्ति ही क्या संसारमें सब कुछ है ? आपको ख़बर नहीं कि सेंटिमेंटके ही आधारपर सारी सृष्टि स्थित है। युक्तिसे सांख्यिक लोग यह सिद्ध कर दिखाते हैं कि नारी केवल अस्थि, मांस, मेद, मज्जा और रक्तकी समष्टि है, तब फिर क्यों लोग उसके वशीभूत होते हैं ? कारण स्पष्ट ही यह है कि पुरुष अपने हृदयमें किसी सेंटिमेंटकी प्रेरणासे नारीके आत्मिक चैतन्यका अनुभव करता है—वह युक्तिद्वारा उसके शरीरके प्रत्येक अवयवका विश्लेषण नहीं करना चाहता। यही बात दूसरे सेंटि-मेंटोंके संबंधमें भी कही जा सकती है। शील, संभ्रम, लज्जा, गांभीर्य—ये स्त्रीके प्रधान गुण माने जाते हैं। सिर्फ़ हमारे ही देशमें नहीं, संसारके सभी सभ्य देशोंका यह हाल है। इन्हीं गुणोंके कारण पुरुष स्त्रीका क़ायल है। थिओरीमें स्त्री भले ही पुरुषको देवता माने, पर उसके देवत्वकी

वास्तविक कल्पना ही वह नहीं कर सकती—क्यों नहीं कर सकती, इस बातपर मैं इस समय बहस नहीं करना चाहता। पर पुरुषके हृदयमें स्त्रीके देवीत्वका आदर्श अच्छी तरहसे जम गया है, इसलिये वह चाहे स्त्रीके ऊपर कैसा ही भयंकर अत्याचार करे, पर फिर भी स्त्रीत्वके प्रति उसके हृदयमें अकपट भक्ति और प्रगाढ़ श्रद्धा पाई जाती है। जिन गुणोंके कारण वह स्त्रीके देवीत्वका क़ायल है, पुरुषका अनुकरण करते ही उनका लोप हो जाता है। इसी लिये मैं कहता था कि जो स्त्री मर्द बनकर स्टेजपर खड़ी हो सकती है और इस बातपर अपना गौरव समझती है, उसमें स्त्रीका सर्वश्रेष्ठ गुण—मातृहृदयका सुमधुर, सरस गांभीर्य—कभी नहीं पनप सकता। इसी तरह राजनीतिक या सामाजिक स्टेजोंपर मर्दोंकी करतूत दिखलानेवाली स्त्री भी माता बननेके योग्य नहीं है।"

अंतिम आक्षेप स्पष्ट ही अम्माँके प्रति था। काकाकी उत्तेजना देखकर और उनकी चुभती हुई बातें सुनकर हम लोग सब सन्न रह गए। अम्माँ यद्यपि स्पष्टतः अपनेको अपमानित समझ रही थीं, तथापि काकाका रुख देखकर कुछ उत्तर देनेका साहस उन्हें नहीं होता था। डाक्टर साहब भी घबराए हुए जान पड़ते थे। आंतरिक दुःखसे काकाने ये सब बातें कही थीं, इसलिये तर्कद्वारा उनका विरोध करनेकी शक्ति किसीमें नहीं थी।

नौकरने कहा—"छोटे बाबू तबियत ख़राब बतलाते हैं—खानेको नहीं आना चाहते।"

वाद-विवादमें पड़े रहनेके कारण राजूका ख़याल ही किसीको नहीं था। नौकर शायद जवाब लाकर कुछ देरसे खड़ा था। इस समय मौक़ा पाकर उसने राजूकी याद दिलाई। मैं तत्काल समझ गई कि डाक्टर

साहबको भोजनके लिये आमंत्रित करनेके कारण ही वह रुष्ट हो गया है और तबियतका ख़राब होना केवल एक बहाना है।

अम्माँ और काका बड़े चिंतित हुए। काकाने कहा—"तबियत ख़राब है! बात क्या है? कुछ भी हो, डाक्टर साहब यहाँ मौजूद हैं। चलिए डाक्टर साहब, ज़रा उसे देख तो लीजिए।" यह कहकर काका उठनेको तैयार हुए।

डाक्टर साहबने कहा—"बात कुछ समझमें नहीं आती। अभी तक तो वह मेरे साथ बातें कर रहे थे। मुझसे उन्होंने कुछ नहीं कहा।"

इतनेमें राजू वहाँ स्वयं आ पहुँचा और बोला—"मैं पेटमें कुछ दर्द-सा मालूम कर रहा हूँ, इसलिये इस वक्त खाना नहीं चाहता। आप लोग खाइए। मेरी चिंता न कीजिए।"

यह कहकर वह उलटे पाँव लौट चला। डाक्टर साहब भी शायद अब उसके बहानेका कारण थोड़ा-बहुत समझ गए थे। इसलिये मुस्कुराते हुए काकासे बोले—" इन्हें सोनेके पहले गरम पानीके साथ एक गोली हिंगाष्टक चूर्णकी दीजिएगा। "

हम सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। काकाने कहा—" वाह साहब, वाह! ख़ूब! आप तो आयुर्वेदमें भी पारंगत हो गए हैं। विलायती दवाका पानी छोड़कर आप हिंगाष्टक प्रेस्क्राइब करने लगे। ख़ूब!"

" इनका मर्ज़ भी तो साहब, देसी है। ज़रा-ज़रा-सी बातमें इनका मिज़ाज बिगड़ जाता है, और मिज़ाज़ बिगड़नेसे पेटमें दर्द होगा, यह तो मानी हुई बात है।"

डाक्टर साहबका यह आक्षेप अत्यंत रूक्ष था। कह नहीं सकती कि राजूके कानोंमें यह बात गई या नहीं। पर यह मेरे कानोंमें भी खटकने लगी।

१३

कुछ भी हो, राजूकी मानसिक प्रवृत्ति देखकर मैं हैरान थी। मैं सोचने लगी—" क्यों वह डाक्टर साहबको देखकर इस क़दर जलता है!" उसका आजका व्यवहार किसी तरह सभ्य और सुशिष्ट नहीं कहा जा सकता था। मेरे मनमें विद्रोहका भाव समा गया। अपने सनकी और युक्तिहीन भाईपर बड़ा क्रोध आया। मैंने सोचा—" पर्दानशीन औरतोंको पर-पुरुषोंके साथ बातें करनेका अधिकार नहीं होता। इस सत्यनाशी प्रथाके विरुद्ध अब देश-भरमें आंदोलन मच रहा है। पर हमारे घरमें स्त्री-स्वाधीनता पूर्णरूपमें वर्त्तमान होनेपर भी राजूको यह बात बेतरह अखरती है कि मैं डाक्टर साहबके साथ बेधड़क बातें करती हूँ। यह कैसा अन्याय है! नहीं, इस अन्यायका विरोध करना ही होगा। राजूका लिहाज़ करने और उससे डरनेसे काम नहीं चलेगा!" सोचते-सोचते क्रोधके कारण मेरा खून खौलने लगा। मैं दाँतोंको पीसकर रह गई।

खा-पीकर मैं डाक्टर साहबके साथ अपने कमरेमें आई। डाक्टर साहबने प्रस्ताव किया कि आज पैलेस थिएटरमें एक बिलकुल नया और सनसनी फैलानेवाला फ़िल्म दिखाया जा रहा है, वहाँ चलना चाहिए।

मैं राजूके अन्यायका बदला लेना चाहती थी। इस लिये प्रतिहिंसाके भावसे प्रेरित होकर तत्काल सम्मत हो गई। जिस तरहसे राजू अधिक-अधिक जले, अब मैं वही उपाय चाहती थी। विना किसीकी आज्ञा लिए, गुप्त रूपसे शोफ़रको सूचित करके हम दोनों निकल पड़े। मैं बाहरसे गरम कोट पहन लाई थी और गलेमें मुलायम पशम भी डाल लाई थी। पर फिर भी जाड़ेसे शरीर काँप रहा था। कह नहीं सकती

कि मेरा जाड़ा कितना कल्पित था और कितना वास्तविक। आज मैंने जो असीम दुस्साहसका काम किया था, उसके कारण भी शायद सर्वांगमें कँपकँपी मालूम होती थी। कुछ भी हो, मैं मोटरमें बैठे-बैठे डाक्टर साहबके कंधेपर हाथ डालकर उनके गलेसे लिपट गई। अभिसारकी इस निस्तब्ध, अंधकारमयी रात्रिमें मेरा प्रेमिक मुझे विना ढूँढ़े मिल गया था, उसे मैं कैसे छोड़ सकती थी?

बहुत देर तक हम दोनों मंत्र-विह्वलकी तरह स्तब्ध होकर बैठे रहे। अचानक डाक्टर साहबने अत्यंत धीमे स्वरसे मेरे कानमें कहा—"लज्जा, क्या सिनेमामें जाना जरूरी है?"

"तब कहाँ जाओगे?"

प्रश्न करते समय मेरा कलेजा धड़क रहा था।

डाक्टर साहब बोले—"चलो, लौट चलें।"

मैं गुस्सेसे काँपने लगी। बोली—"तब क्यों मुझे इतनी दूर लाए?"

"अच्छा सिनेमामें नहीं, किसी दूसरी जगह चलें?"

"कहाँ?"

डाक्टर साहब जरा हिचकिचाए। उनकी हिचकिचाहट देखकर मैं किसी अज्ञात आशंकासे सिहर गई। मेरे दिलकी धड़कन बढ़ने लगी। कुछ देर बाद वह बोले—"अच्छा चलो, सिनेमामें ही चलें।"

डाक्टर साहबकी इन संशय और द्विविधासे भरी बातोंको सुनकर मैं बेतरह घबरा गई और डरके कारण मैंने और भी ज्यादा मजबूतीसे उन्हें जकड़ लिया।

सिनेमा हॉलमें पहुँचनेपर विद्युद्दीप्त प्रकाशसे मेरा भय कुछ दूर हुआ। राजूको मेरे प्रणय-पलायनका समाचार विदित हुआ या नहीं, यह बात

सोच-सोचकर मेरे शरीरमें लोमहर्ष उत्पन्न हो रहा था—कह नहीं सकती कि यह लोमहर्ष भयके कारण था या प्रतिहिंसा-जनित आनंदके कारण। पर फिर भी राजूके दिलकी जलनकी कल्पनासे मेरे दिलकी हालत अजीब होती जाती थी। भाईके प्रति ऐसी उत्कट प्रतिहिंसाका भाव किसी बहनके हृदयमें कभी उत्पन्न हुआ है या नहीं, मैं नहीं जानती। मैंने अपने मनमें कहा—"विवाह होनेके बाद यदि मैं किसी पर-पुरुषके प्रति आसक्त होती तो राजूका यह दुर्भाव मैं किसी तरह सह लेती। पर अविवाहित अवस्थामें जब मैं किसी पुरुषको चाहती हूँ—" मैं अधिक सोच न सकी। फिर एक बार कुढ़कर दाँतोंको पीसकर रह गई।

पर मेरे विवाहके संबंधमें काका और अम्माँके मनमें क्यों चिन्ता उत्पन्न नहीं होती, यह सोचकर मैं हैरान थी। इसमें संदेह नहीं कि मुझे अब अपने विवाहके संबंधमें कोई चिन्ता नहीं थी। क्योंकि मैंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि विवाह करूँगी तो डाक्टर साहबके ही साथ करूँगी, नहीं तो विष पीकर मर जाऊँगी। पर काका और अम्माँ क्या सोच रहे थे? वे क्या मेरे मनकी हालतसे परिचित नहीं थे? यह हो नहीं सकता था। मेरी मानसिक स्थिति स्पष्ट थी। वह किसीसे छिपी नहीं रह सकती थी। पर क्या वे मेरे इस प्रणयका अनुमोदन करते थे? मुझे इस संबंधमें केवल अम्माँका भरोसा था। क्योंकि मैं जानती थी कि वह डाक्टर साहबको स्नेहकी दृष्टिसे देखती हैं। और काका चाहे डाक्टर साहबको न चाहें, पर अम्माँके और मेरे एकमत होनेसे वह कभी बीचमें विघ्न नहीं डालेंगे, यह बात भी मैं अच्छी तरहसे जानती थी। क्योंकि मुझे मालूम था कि वह कभी किसीकी मानसिक स्वाधीनतामें दबाव डालना पसंद नहीं करते थे। पर राजू! वह चाहे प्रत्यक्षमें इस कार्यमें

बाधा न डाले, पर उसका दुर्भाव मैं जीवन-भर कैसे सहन करूँगी ? फिर उसी अप्रिय भावनासे मेरे दिलमें जलन पैदा होने लगी और मुझे आकाशको फाड़ने और धरतीको चीरनेकी इच्छा हुई।

१४

चित्र-लीला आरंभ हो गई थी। अमेरिकन फ़िल्म था। डाक्टर साहबने कहा था कि सनसनी पैदा करनेवाला फ़िल्म है। पर मैं सब फ़िल्मोंको एक-सा समझती हूँ। युवक-युवतियोंका वही बाधा-हीन स्वच्छंद विलास, प्रेमका वही आलस्य और अफ़ीमका-सा नशा, पाश्चात्य-जीवनकी वही उन्मत्त लास्य-लीला। नित्य यही सब बातें देखनेमें आती थीं। पर आज इस उद्दाम, चंचल प्रेमके उन्मुक्त, बंधनहीन प्रवाहमें संशयहीन होकर बह जानेकी उत्कट इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई। मैंने सोचा—" अगर मेरा जन्म योरप या अमेरिकामें होता तो क्या वहाँ मेरा भाई कभी मेरे स्वच्छंद प्रेममें बाधा पहुँचाता ? "

तमाशा खतम होने पर जब हम दोनों लौट चले तो मेरा चित्त जड़ता और अवसादसे आच्छन्न हो गया था। घर पहुँचने पर मैंने डाक्टर साहबसे कहा—" आज आपको यहीं रहना होगा। मुझे अकेले डर लगता है। परसों तक लीला मेरे साथ सोती थी, पर आज कोई नहीं है। आजकी रात हम दोनोंको जागरणमें बितानी होगी। गप्पें मारते हुए बैठे रहना होगा। "

पर पिछली रात नाटक देखनेमें जगे रहनेके कारण मेरी आँखोंमें नींदका बड़ा प्रकोप हो रहा था और आँखें झपती जाती थीं।

डाक्टर साहब बोले—" कल रातके जागरणसे तुम्हारी आँखें लाल हो गई हैं और झप रही हैं। अगर आज रात भी जगे रहना होगा तो बड़ी आफ़त होगी। "

मैं बच्चोंकी तरह ज़िद करते हुए बोली—"नहीं, मुझे डर लगता है, मैं किसी तरह यहाँ अकेली नहीं रह सकती।"

डाक्टर साहबने कहा—"अच्छी बात है। मुझे कोई उज्र नहीं। मैं तुम्हारे ही लिये कहता था।"

मैं चारपाईपर लेट गई और डाक्टर साहब भी मेरी ओर मुँह करके पासवाले एक कौचपर लेट गए। प्रेमकी इस मोहोत्पादक स्तब्ध रात्रिमें हम दो प्रणयी उस निर्जन कमरेमें, उस आलस्यविलास-मय तंद्रावस्थामें, विना किसी बाधा या रुकावटके निर्मुक्त भावसे अवस्थित थे। पर एक प्रकारकी अनोखी धुकधुकीसे क्यों मेरा हृदय आंदोलित हो रहा था? क्या डाक्टर साहबका भी यही हाल था?

उस समय मैंने अपनी उस ज्यादतीपर कुछ भी विचार नहीं किया। पर आज जब अपने उस दुस्साहसकी बात याद आती है तो आतंकसे कलेजा काँप उठता है। न जाने किस देवताकी मंगलेच्छासे मैं उस रात बच गई। नहीं तो मैं जिस घोर अनर्थकी सीमा-रेखाके पास पहुँच गई थी, उसकी कल्पना भी आज नहीं कर सकती।

मैंने कहा था कि बैठे-बैठे गप्पें मारेंगे। पर गप्पें मारनेकी शक्ति किसीमें नहीं थी। दोनों लालसा, मोह, आलस्य और तंद्रासे आच्छन्न होनेके कारण ऐसे परास्त और दुर्बल होकर पड़े हुए थे कि किसी बातकी सुध नहीं थी।

इच्छा न होने पर भी लेटे-लेटे मेरी आँखें धीरे-धीरे लग गईं और मैं कुछ ही देरमें घोर निद्रामें अभिभूत हो गई।

जब आँख खुली तो देखा कि डाक्टर साहब वहाँ नहीं हैं। हाथमें बँधी हुई घड़ीमें समय देखने पर मालूम हुआ कि तीन बज चुके

हैं। जाते वक्त डाक्टर साहब बाहरकी तरफ़का किवाड़ बंद कर गए थे, पर फिर भी जाड़ा मालूम हो रहा था। डर और जाड़ेसे सिरसे पैर तक काँपते हुए मैंने विना कपड़े उतारे गरम कोटके ऊपर दो कंबल ओढ़ लिए और मुँह भी ढाँप लिया। हाथकी घड़ी भी नहीं उतारी। कहीं कोई दुष्ट प्रेतात्मा किसी क्षुद्र छिद्रद्वारा प्रवेश करके मेरा गला न दबा बैठे, इस भयसे मैंने कंबलोंको चारों तरफ़से अच्छी तरह समेटकर शरीरके नीचे दबा लिया और पाँव न पसारकर ऊपरको समेट लिए। भयके कारण मेरी निद्रा-जड़ित आँखें कुछ ही देरमें सचेत और जागरित हो गईं।

धीरे-धीरे जब भय कुछ कम हुआ तो अपने संबंधमें नाना चिन्ताओंने मुझे आ घेरा। मैंने सोचा—स्त्रीका जीवन क्या केवल शारिरिक और मानसिक दुर्बलताओंमें ही बीतनेके लिये है? उसका क्या और कोई उद्देश्य नहीं है? कब तक मुझे पुरुषका सहारा मिलता रहेगा और कब तक मैं दूसरोंकी सहायताके भरोसे अपना जीवन बिताऊँगी? भगवान! क्यों तुमने स्त्री-जातिको इतना अशक्त, दुर्बल और सुकुमार बनाकर पैदा किया है!"

मैं अच्छी तरहसे जानती थी कि मेरा यह शारीरिक भय मेरी आत्मिक दुर्बलताका ही दूसरा स्वरूप है। यदि मेरी आत्मामें दृढ़ता, काठिन्य और सहनशीलताके भाव वर्त्तमान होते तो मैं किसी भी बाहरी भयसे कभी भीत न होती। अपने अबलापनसे मन-ही-मन गर्वित होकर डाक्टर साहबकी संरक्षकताका आनंद लूटनेकी इच्छा कभी न करती। अकेले, शांत और संयत भावसे, अपने भीतरकी समस्त यातनाओंको नीरवताके साथ वहन करती चली जाती। पर नारी-हृदयमें दृढ़ता और सहनशीलताका होना एक प्रकारसे असंभव ही है। ये ही गुण ऐसे हैं जो उसके

जीवनकी सार्थकताके लिये परमावश्यक हैं और इन्हीं गुणोंका उसमें अभाव पाया जाता है। भाग्य-चक्रका परिहास इसीको कहते हैं!

प्रायः दो घंटे तक दुःख, शोक, अवसाद और भ्रांति-मिश्रित इसी प्रकारकी भावनाओंमें मैं निमग्न रही। फिर धीरे-धीरे मेरी आँखें झपने लगीं और मैं अचेत होकर सो गई। जब आँख खुली तो सूरज बहुत ऊपर चढ़ चुका था।

१५

एक दिन कॉलेजमें मेरी बाल्य-संगिनी और सहपाठिनी कमलिनी-ने मुझसे कहा—" कल तेरे डाक्टर साहबसे मेरा परिचय हो गया है। हमारे अँगरेजीके प्रोफ़ेसर साहबके साथ कल शाम अचानक वह मेरे कमरेमें घुस पड़े। उस समय घरपर कोई नहीं था। मैं अँगरेजीके 'टेस्ट'की तैयारीमें लगी थी। मैं तो इस 'सरप्राइज विजिट'से चौंक पड़ी। प्रोफ़ेसर साहबने परिचय कराया। डाक्टर साहब बड़े मज़ेके आदमी जान पड़े। ग़ज़बकी बातें करते हैं। मुझसे कहते थे कि अपने कॉलेजकी सब लड़कियोंसे मेरा परिचय करा दो! बाप रे बाप! मैं तो घबरा गई। यह उस दिनके नाटकका मजा है। मैं तो पहले ही कहती थी।"

मेरा कलेजा धक-से रह गया। मुझसे कुछ कहते न बन पड़ा और मेरे चेहरेकी रंगत उड़ गई। फिर भी अपनेको मैंने किसी तरह सँभाला और हाथकी किताबसे उसे मारकर कहा—" चल हट! ऐसी बातें मुझसे करेगी तो मुँह झुलस दूँगी। मुझे न डाक्टर साहबसे मतलब है, न तुझसे।"

वह निष्ठुरताके साथ मुस्कुराती हुई बोली—" क्या सच कहती है ! तुझे डाक्टर साहबसे कुछ भी मतलब नहीं है ? अच्छी बात है । देख लूँगी । " यह कहकर वह जाने लगी ।

मेरे हृदयमें ईर्ष्याकी आग धधकने लगी थी और इसी आगके कारण कमलिनीसे कई बातें पूछनेको जी तड़फड़ा रहा था । इसलिये उसे जाते देखकर मैंने कहा—" अरी पगली, भगती कहाँको है ! ज़रा एक बात सुनेगी भी या नहीं ? "

लौटकर उसने पूछा—" क्या बात ? "

" यही कि तू कब मरेगी ? "

" जब डाक्टर साहबके साथ मेरा ब्याह होगा । " यह कहकर वह निर्लज्जताके साथ खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

पर उसका यह परिहास मेरे लिये असह्य था । कुछ भी हो, उसके सामने मैं अपने हृदयकी तात्कालिक दुर्दशा किसी प्रकार प्रकट नहीं करना चाहती थी । इसलिये बड़े कष्टके साथ धीरज बाँधकर अपने मार्मिक दुःखको हँसीमें उड़ानेका भाव दिखलाकर मैंने कहा—" पर तेरे साथ ब्याह होगा कैसे ? वह तो कॉलेजकी सभी लड़कियोंको अपने जादूकी डोरीमें एक साथ बाँधनेका इरादा किए बैठे हैं ! "

" हाँ, यह बात तो ज़रूर है ! " कहकर वह फिर एक बार खिल-खिला पड़ी ।

उस दिन कॉलेजके लेक्चरमें मेरा जी बिलकुल नहीं लगा । जब घर आई तो मनमें बड़ी बेकली समाई हुई थी । अचानक पंख छिन्न हो जानेपर जिस प्रकार आकाशमें उड़ता हुआ पक्षी शून्यमें कहीं कोई सहारा न पाकर फड़फड़ाता है, उसी तरह मेरा मन भी बेचैनीके सबब

छटपटाने लगा। आज कमलिनीकी तरह सारा संसार मेरा परिहास कर रहा था।

प्रोफ़ेसर किशोरीमोहनका साथ इधर दो-ढाई महीनोंसे डाक्टर साहबने छोड़ दिया था। कम-से-कम हमारे यहाँ डाक्टर साहब पहलेकी तरह उन्हें लेकर अब नहीं आते थे। कारण मुझे मालूम नहीं था। मेरा ख्याल था कि दोनोंके बीच किसी कारणसे अनबन हो गई है। पर आज कमलिनीसे मालूम हुआ कि प्रोफ़ेसर साहबकी सहायतासे डाक्टर साहब कॉलेजकी सभी लड़कियोंसे परिचित होना चाहते हैं। यह समाचार बिलकुल अप्रत्याशित था।

दुर्बलता! दुर्बलता! यह सब मेरे नारी-हृदयकी स्वाभाविक दुर्बलताका ही फल था! क्या अपने हृदयको वज्रसे भी कठोर और पत्थरसे भी दृढ़ बनानेका कोई उपाय मेरे लिये नहीं था? मन-ही-मन कहने लगी—"भगवान्, क्या मैं किसी भी उपायसे संसारके सब स्त्री-पुरुषोंकी उपेक्षा करके अकेले अपने बलपर खड़ी नहीं हो सकती? बात-बातमें संशय और भयकी यह धुकधुकी अब किसी तरह सही नहीं जाती!"

डाक्टर साहबके इंतज़ारमें रहकर मैं उनके आने तक किसी तरह अपना समय बिताना चाहती थी। एक ताज़ा अख़बार हाथमें लेकर पढ़ने लगी। मेरे पास दो-तीन अख़बार रोज़ पहुँच जाते थे, पर मैं कभी जी लगाकर उन्हें नहीं पढ़ सकती थी। ऊपर हेड-लाईन देखकर जो कुछ बातें मालूम हो जाती थीं उन्हींमें संतुष्ट रहती थी। इधर असहयोग आंदोलनने बड़ा ज़ोर पकड़ रखा था। नित्य नए-नए उत्साह और नई-नई सनसनीकी ख़बरें अख़बारोंमें छप रही थीं। पर मुझे अपने स्वप्नों और चिंताओंके आगे ये सब बातें अत्यंत तुच्छ जान पड़ती थीं। काकाको नेताओंसे

परामर्श करने, नई-नई 'स्कीमों'को रचने और शहर-शहरमें जाकर सभा-समितियोंमें जोश फैलानेके कारण बिलकुल बेफुर्सती रहती थी। अम्माँ भी अत्यंत उत्साहित होकर स्त्रियोंमें नई 'जागृति' उत्पन्न करनेकी चेष्टामें लगी थीं। पर राजू और मैं इन सब बातोंके प्रति उदासीन थे। मैं इसलिये उदासीन थी कि अपनी ही आत्माके तात्कालिक सुख और संतोषकी कल्पनामें मग्न थी। और राजूकी दृष्टि शायद इस वर्त्तमान कोलाहलके परे जीवन और मृत्युके किसी निगूढ़ और गंभीर उद्देश्यकी ओर लगी हुई थी। एक ही वर्षके भीतर जिस आंदोलनका जोश बिना किसी फलकी प्राप्तिके ठंडा पड़ गया था उसे कोलाहलके अतिरिक्त और क्या कहा जाय!

कुछ भी हो, नित्यकी तरह आज भी मैं अखबारके हेड-लाईन देखकर पन्ने उलटती गई। लोगोंका खयाल है कि अखबारोंमें नित्य नई-नई खबरें पढ़नेको मिलती हैं। यह कैसी भयंकर भूल है, इस बातको बहुत कम लोग समझते हैं। संसारका चक्र कुछ थोड़े हेर-फेरोंके साथ नित्य एक ही रूपमें चलता जाता है। पर मनुष्य ऐसा अंधा है कि वे हेर-फेर उसे नित्य नए जान पड़ते हैं। आज अमुक स्थानमें हिंदू-मुसलमानोंका दंगा हुआ। दो-तीन दिनके बाद फिर पढ़िए। किसी दूसरे स्थानमें ठीक उसी ढंगका झगड़ा दूसरे रूपमें हो गया। आज अमुक नेताग्रणीने किसी विराट् सभामें बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें कहा कि हमारे युवकोंको संसारके सब काम छोड़कर देशकी सेवामें लगकर स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये मर मिटना होगा। यही बात सैकड़ों प्लेटफ़ार्मोंसे सैकड़ों नेता नित्य चिल्लाते जाते हैं और नित्य वही एक ही बात अखबारोंमें पढ़नेको मिलती है। अखबारोंको तो कॉलम काले करके ग्राहकोंको फुसलानेका मौका मिल जाता है। पर नेता लोग न मालूम क्या आदर्श अपने सामने

रखकर युवकोंको संसारके अन्य सब काम छोड़कर 'देशोद्धारमें' लगे रहने-का उपदेश देते हैं। संसारमें विपुल जीवनकी जो धारा अविरल गतिसे प्रवाहित हो रही है उसके सभी वृहत् कर्मोंसे विमुख होनेपर देशोद्धारका अर्थ केवल यही रह जाता है कि शहर-शहर, गाँव-गाँवमें जाकर चंदा जमा करो, हैंडबिल बाँटो, स्थान-स्थानपर क्रांतिके प्लेकार्ड चिपकाओ, प्लेट-फ़ार्मोंपर खड़े होओ, कौंसिलोंमें घुसो, अख़बारोंमें जोरदार टिप्पणियाँ लिखो और बहुत हुआ तो जेल जाओ। ये ही सब बातें नित्य अख़-बारोंमें पढ़नेको मिलती हैं। बहुत हुआ तो आप यह पढ़ेंगे कि रूसमें क्रांति मचनेके कारण ज़ार क़त्ल किया गया और सोवियट गवर्नमेंटका अधिकार स्थापित हो गया। कुछ दिनोंके लिये यह ख़बर नई जान पड़ती है, पर फिर शासनका वही पुराना नियम जारी हो जाता है, फिर वही क़ानून, वही जुल्म, युद्ध और प्रतिहिंसाकी वही घातक प्रवृत्ति, वही अंतराष्ट्रीय कूटनीति!

आज भी कोई नई ख़बर नहीं थी। उठकर मैंने अख़बार नीचे पटक दिया और ऊपर छतपर चली गई। चार बज चुके थे। धूप बहुत मीठी जान पड़ती थी। हमारे विशाल भवनकी यह छत बहुत ऊँचेपर थी। दक्षिणकी ओर दृष्टि डालनेपर गंगा-यमुनाका संगम यहाँसे स्पष्ट दिखलाई देता था। मैं इस सुंदर दृश्यको अक्सर देखती थी। आज भी उसी ओर टकटकी बाँधकर खड़ी रही। संगमका शांत, स्थिर और स्निग्ध प्रवाह देखकर मेरे चंचल और उत्तेजित हृदयमें एक मीठी और शांत उदासी व्याप्त हो गई। अकारण मेरी आँखोंसे आँसू उमड़ चले और हृदयकी ज्वाला धीरे-धीरे बुझने लगी।

बहुत देर तक मैं छतपर इधर-उधर टहलती रही। फिर नीचे उतर-कर बगीचेमें चली आई और फूलोंकी क्यारियोंकी परख करने लगी।

पर वहाँ भी मन नहीं लगा और मैं लौटकर अपने कमरेमें चली आई । सारे शरीरमें थकावट मालूम होती थी, इसलिये पलँगपर लेट गई । सोनेकी चेष्टा करने लगी, पर नींद नहीं आती थी ।

१६

आखिर डाक्टर साहब आही पहुँचे । मैं उठ बैठी और व्यंगके बतौर मैंने नीचे झुककर धरती छूकर सलाम किया । बोली—"सैकड़ों परीजादियोंकी गलबँहियोंसे जकड़े रहनेपर भी हुजूर इस बाँदीको नहीं भूले, इसके लिये हुजूरका शुक्रिया अदा करती हूँ ।"

मेरा यह नया ढंग देखकर डाक्टर साहब दंग रह गए । अत्यंत विस्मित होकर बोले—"यह क्या ! आज यह क्या अजीब तमाशा देखता हूँ !"

मैंने कहा—"डाक्टर साहब, बड़ी खुशीकी बात है कि आजकल दिन-दिन आपके मरीजोंकी संख्या बढ़ती जाती है । आज कितनी युवतियोंकी नाड़ी देखकर आप यहाँ पधारे हैं ?"

घबराकर डाक्टर साहब बोले—"क्यों, क्यों ! बात क्या है ? समझाकर क्यों नहीं कहतीं ?"

"वाह साहब, खूब ! आप इस समय तो ऐसे भलेमानस बने हैं, जैसे कुछ जानते ही नहीं ।"

"तुम्हारी क़सम, मुझे कुछ नहीं मालूम ।"

"सच कहते हो ?"

"तुम्हें क्या बिश्वास नहीं होता ?"

"अच्छा सच बतलाओ, कल कमलिनीके यहाँ गए थे या नहीं ?"

डाक्टर साहबका चेहरा स्याह हो गया, मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। खीसें निकालकर बोले—" गया तो था। पर इसके क्या यह मानी हैं कि मैं किसी बुरी निगाहसे वहाँ गया था? प्रोफ़ेसर किशोरीमोहन मेरा हाथ पकड़कर वहाँ ले गए थे। अगर यह बात पहलेसे मालूम होती कि वहाँ जाना इतना बड़ा अपराध है, जितना तुम समझे बैठी हो तो हर-गिज़ न जाता।"

डाक्टर साहब अपने गुस्सेको जबरदस्ती पी रहे थे। पर उनके गुस्सेकी परवा न कर मैं अपनी ईर्ष्याकी असह्य आँचसे उन्हें जलाते हुए बोली—" कमलिनीके साथ क्या तुम्हारी कोई ख़ास बात नहीं हुई?"

उत्तरमें डाक्टर साहब लापरवाहीकी हँसी हँसे और बोले—" मैं समझ गया हूँ, कमलिनीने तुम्हारा वहम बढ़ानेके लिये कई बातें अपने मनसे गढ़कर कही हैं। मैं इस प्रकारकी बनावटी और झूठी बातोंकी कोई सफ़ाई नहीं देना चाहता। तुम्हारा जी चाहे तो इन बातोंपर विश्वास करो, न चाहे तो न करो।"

मैंने मनमें कहा—" प्यारे, तुम अगर कृष्णकी तरह सोलह हजार गोपियोंको भी अपने पास रक्खो, तो भी मैं तुम्हें प्यार करना नहीं छोड़ सकती। तुम्हारी बातोंपर विश्वास करूँ चाहे न करूँ, इससे मेरे प्रेममें कोई फ़रक़ नहीं पड़ सकता। सिर्फ़ इतनी ही विनती करती हूँ कि दर्शनकी प्यासी इस दासीको दिनमें एक बार अपना प्यारा मुखड़ा दिखला दिया करो।"

अपना सारा क्रोध भूलकर मैं फिर एक बार उनके गलेसे लिपटनेके लिये लालायित हो उठी।

मैंने कहा—" मैं सफ़ाई नहीं चाहती। इन बातोंको लगे आग। पर मेरी मौतके दिन अब नजदीक आ गए हैं। दिन-भर मेरे मनमें डर

बना रहता है और रात-भर मैं काँपती रहती हूँ, और नींद नहीं आती। मेरे पीछे या तो कोई भूत लग गया है या कोई ख़राब बीमारी चिपट गई है। जल्दी इसका इलाज न होगा तो मैं जरूर मर जाऊँगी।" मेरी आँखें भर आती थीं।

डाक्टर साहब बोले—"भूत-वूत कुछ नहीं, तुम यों ही घबरा उठी हो। तुम्हारे लिये सिर्फ़ 'नर्व-टानिक' की ज़रूरत है। दो दिनमें तुम्हारी यह 'वीकनेस' सब ठीक हो सकती है। 'वाइब्रोना' या 'मेनोला' किसीका भी इस्तेमाल कर सकती हो। 'न्यूरेस्थीनिया' के लिये एक ऐसा टॉनिक मैं बतला सकता हूँ जो अचूक और तत्काल फलदायक होगा। पर उसका नाम सुनते ही तुम चौंक पड़ोगी, इस लिये साहस नहीं होता।"

उत्सुक होकर मैंने कहा—"अब तुम्हें बतलाना ही होगा। मेरा जी तलमलाने लगा है।"

"पोर्टवाइन! धीरे-धीरे इसका अभ्यास करनेसे सब क़िसमकी कम-ज़ोरियाँ बहुत जल्दी काफ़ूर हो जायँगी, मैं दावेके साथ यह बात कह सकता हूँ। सिर्फ़ सेंटीमेंटको दबानेकी ज़रूरत है।"

टॉनिकका नाम सुनकर मैं वास्तवमें घबरा गई। बोली—"माफ़ी चाहती हूँ। मुझे किसी टॉनिककी जरूरत नहीं।"

डाक्टर साहबने कहा—"मैं तो पहले ही यह बात कह चुका था। इस प्रकारके वाहियात सेंटीमेंटोंकी वजहसे ही यह देश आज दुर्बल और नपुंसक बना है। पहले हमारे देशमें इन सब बातोंमें स्वाधीनता पाई जाती थी। आयुर्वेदमें कहा गया है कि 'औषधार्थे सुरां पिबेत्'। पर आजकल सभ्य समाजमें 'टेंपरेंस' का ढोंग पाया जाता है। मैं कई

ऐसे लोगोंको जानता हूँ जो एक-एक बोतल रोज साफ़ कर जाते हैं, पर बाहर आकर कहते हैं कि हम तो कोई विलायती टॉनिक भी इसलिये नहीं पीते कि उसमें बीस 'पर सेंट' एल्कोहल मिला रहता है। यह सब ढोंग नहीं तो क्या है! मैं तो दो-चार पेग रोज चढ़ा लिया करता हूँ—फॉर हेल्थ्स सेक। मैं यह बात किसीसे छिपाना नहीं चाहता। तुम्हारे समाजकी कई लेडियाँ भी तो पार्टियोंमें खुले-खजाने 'ड्रिंक' करती हैं!"

मुझे आज तक मालूम नहीं था कि डाक्टर साहब रसायन-विशेषका सेवन करते हैं। मेरे हृदयमें इस 'रसायन'के विरुद्ध जो एक संस्कार (डाक्टर साहब जिसे सेंटीमेंट कह रहे थे) बद्धमूल था, उसपर आघात पहुँचा। कुछ भी हो, डाक्टर साहबकी अंतिम बात सत्य थी। जिन सभ्य महिलाओंके समाजमें हम लोगोंको आना-जाना पड़ता था उसमें ऐसी महिलाएँ कुछ कम नहीं पाई जाती थीं जो नित्य मद्यका सेवन करती थीं। पर हमारे कुटुंबमें इसका उपयोग बिल्कुल निषिद्ध था। संभव है, किसी जमानेमें काकाने इसका उपयोग किया हो। पर अब राजूका कट्टर-पन देखकर सबके मनमें इस तरल पदार्थके प्रति उत्कट घृणा उत्पन्न हो गई थी।

मैंने कहा—"मैं समझ गई, तुम कभी मेरे रोगका ठीक-ठीक निदान नहीं कर सकते। सिर्फ़ एक धुन तुम्हारे मनमें समाई हुई है। वह यह कि तुम हद दर्जे तक मेरा नैतिक पतन देखना चाहते हो। स्त्रियोंकी मानसिक दुर्बलता जितनी बढ़ती जाती है, पुरुषोंको उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती है। पुरुषोंमें नैतिक दृढ़ता नहीं होती, इसलिये वे इस संबंधमें स्त्रियोंका बड़प्पन सहन नहीं कर सकते।"

मेरी इस बातका कुछ उत्तर न देकर डाक्टर साहब मुस्कुराने लगे।

१७

रातको मैंने लीलाको सोनेके लिये अपने ही कमरेमें बुलाया। सोनेके पहले लीलाने कहा—" माधवी दीदीके पति सख्त बीमार हैं। "

मैंने आश्चर्यके साथ पूछा—" कौन माधवी दीदी ? "

" वही जिनके यहाँ उस दिन हम लोग गए थे। जिन्होंने भीतरका दरवाजा खोला था—दीनू और रामूकी अम्माँ। उनके पति देहरादूनमें नौकर हैं। वह माधवी दीदीको अपने साथ ले जानेके लिये यहाँ आए थे। यहाँ आते ही उन्हें न्यूमोनिया हो गया—डबल न्यूमोनिया। आज चार दिन हुए। आज हालत बहुत खराब है। डाक्टर लोग भी निराश हो गए हैं। भैया मुझे साथ लेकर आज वहाँ गए थे। "

इस दुःखी कुटुंबके साथ लीलाने भी अपना संबंध स्थापित कर लिया था। केवल मेरे लिये ही इस कुटुंबका जीवन बिलकुल विदेशी, अपरिचित, अज्ञात और विजातीय था। पर आज लीलाकी माधवी दीदीके पतिका समाचार सुनकर मेरे हृदयके तलप्रदेशमें सहानुभूतिकी एक सुकुमार वेदना उत्थित होने लगी। उस तेजस्विनी नारीकी वह क्षणिक झलक जो मैंने देखी थी, वह फिर मेरे हृदयमें प्रतिबिंबित होने लगी।

मैंने पूछा—" माधवी दीदी क्या रोती थीं ? "

लीलाने कहा—" रोएगी क्यों नहीं ! भैया उन्हें दिलासा देते थे। "

असहाय, अबला नारी-जातिकी जन्म-जन्मांतरकी वही प्रकृति-गत दुर्बलता ! रोओ, रोओ ! हे नारी ! तुम्हें रोनेके अतिरिक्त और कोई अधिकार या बल ही ब्रह्माने नहीं दिया है।

लीलाने पूछा—" दीदी, विधवाको क्या सचमुच भारी दुःख होता है? माँ-बापके मरनेका दुःख क्या पतिके मरनेके दुःखसे बड़ा नहीं होता?"

इस अबोध बालिकाको मैं यह बात कैसे समझाती जब विधवाके दुःख-का मर्म मैं स्वयं नहीं समझती थी! मुझे विधवाका दुःख केवल स्वार्थ-जनित जान पड़ता था। स्त्रीके हृदयकी असमर्थतासे मैं भली भाँति परिचित थी। मेरी यह धारणा थी कि स्त्रीका शक्तिहीन हृदय उसके जीवनका भार ढोनेमें असमर्थ है, इसलिये पुरुषके ऊपर अपने जीवनका दुर्बल भार डालकर वह निश्चिन्त होकर अपना जीवन बिताती है। पर जब अचानक उसका पुरुष किसी अपरिचित कारणसे अपना बोरिया-बँधना फेंककर किसी अज्ञात देशकी यात्राको चल पड़ता है तो स्त्रीके लिये महासंकटमय स्थिति उपस्थित हो जाती है। वैवाहिक जीवनमें वह भार वहन करनेकी रही-सही शक्ति और अभ्याससे भी वंचित हो जाती है, इसलिये विधवाकी अवस्था और भी अधिक जटिल हो पड़ती है। वैधव्यके दुःखकी इसी प्रकारकी धारणा मेरे हृदयमें बद्धमूल थी।

मैंने कहा—" मैना, माँ-बापके मरने पर भी घोर दुःख होता है और पतिके मरनेपर भी। कौन दुःख बड़ा है और कौन छोटा, यह मैं नहीं बतला सकती। भगवानसे विनती करती हूँ कि इन दो दुःखोंमेंसे कोई भी दुःख मुझे न सहना पड़े।"

कुछ देर तक चुप रहकर लीला अचानक बोल उठी—" अच्छा दीदी, कोई कहानी सुनाओ, पलँगके ऊपर लेटे-लेटे सुनूँगी। तुम भी अपने पलँगके ऊपर लेट जाओ।"

जो कहानियाँ मुझे याद थीं प्रायः उन सबको लीला सुन चुकी थी। पर फिर भी उसकी हवस पूरी नहीं होती थी। बेताल-पचीसीकी दो-तीन

कहानियाँ मुझे याद थीं। सभ्य-समाजमें हमारे प्राचीन, हिंदू-समाजकी इन सुंदर लौकिक कथाओंका प्रचलन नहीं है। पर राजू बड़ा शैतान और धूर्त लड़का था। अँगरेजी और फ्रेंच कहानियोंसे उकताकर वह मथुरामें छपी यह अनोखी पुस्तक न मालूम कहाँसे एक दिन उठा लाया। मैंने भी उसे चुराकर पढ़ा था। पर लीलाके हाथ वह पुस्तक न लगी—शायद कोई नौकर उड़ा ले गया था। कुछ भी हो, लीलाको वह कहानियाँ बिलकुल नई और रोचक जान पड़ीं। दो कहानियों तक तो वह हुँकारा भरती रही, पर तीसरी कहानीके आरंभसे ही उसकी आँखें लग गईं।

एक लंबी साँस लेकर मैंने करवट बदली। अपनी प्यारी, भोली और स्नेहमयी बहनको अचेत जानकर मेरे मनमें एक सकरुण, स्नेहमय, सुमधुर विषादका भाव व्याप्त हो गया। अचानक न मालूम क्या सोचकर मैं पलँग परसे उठ बैठी और लीलाके पास जाकर बड़े गौरसे उसकी ओर टकटकी बाँधे रही। उसके प्यारे मुखमें मूर्च्छाकी तरह मनोमुग्धकर आभा प्रभासित हो रही थी। मेरी आँखोंसे प्रेमके आँसू उमड़ चले। मैंने बार-बार उसका मुँह चूमा, पर फिर भी जी नहीं भरता था। वह अचेत पड़ी थी। मेरे चुंबनसे उसकी निद्रामें बिलकुल विघ्न नहीं पहुँचा। लीला कैशोरावस्थामें पदार्पण कर चुकी थी। पर उसके स्वभावमें और मुखमें किसी प्रकारकी तीव्रता या स्वप्नमय जीवनका आवेश नहीं पाया जाता था। बालकपनकी वही सरलता और स्निग्ध चंचलता अभीतक उसकी प्रकृतिमें वर्त्तमान थी। इस कारण मैं उसे और भी अधिक प्यार करती थी। मेरी आँखें उसीके मुँहकी ओर लगी थीं और हटना नहीं चाहती थीं। उसे ताकते-ताकते एक तीखी, सुकुमार वेदनासे मेरा हृदय रह-रहकर काँप उठता था।

मैंने सोचा—" लीला जब बड़े सुखमें शांतिपूर्वक सोई हुई है तो क्यों मेरे मनमें उसके लिये करुणामय वेदना जागरित हो रही है ? यही क्या संतानकी मंगलाकांक्षिणी माताके हृदयका हाहाकार है ? अगर ऐसा है तो कैसे मेरे स्वार्थपूर्ण, निष्ठुर हृदयमें यह भाव अपने आप संचारित होने लगा है ?"

प्रकृतिके अज्ञान और अज्ञेय चक्रके प्रति संभ्रमके साथ मन-ही-मन प्रणाम करके मैं फिर लौटकर अपने पलँगपर आकर लेट गई।

१८

दूसरे दिन खा-पीकर जब मैं कॉलेज जानेकी तैयारी कर रही थी, तो लीला रोते हुए मेरे पास आई और कहने लगी—"माधवी दीदी विधवा हो गई।"

मेरा कलेजा-धक-से रह गया। चौंककर मैंने कहा—" ऐं ! यह क्या कहती है !"

लीला बोली—" अभी भैयाको बुलाने एक आदमी आया है। मैं आज स्कूल नहीं जाऊँगी। भैयाके साथ वहीं जा रही हूँ।"

" राजूने क्या मुझे बुलाया है ?"

" नहीं, उन्होंने मुझसे अपने साथ चलनेके लिये कहा। मैं सिर्फ़ तुम्हें ख़बर देनेके लिये आई हूँ।"

मैंने सोचा—" माधवी दीदीका संबंध केवल इन दो जनोंके साथ है—मैं उनकी दुनियासे बिलकुल बाहर हूँ और उनकी बहन कहलाए जानेके योग्य नहीं हूँ। इसलिये राजू उनकी इस घोर संकटमय स्थितिमें मुझे उनके पास ले जाना नहीं चाहता। जब उनसे मेरा कोई नाता ही नहीं

है और केवल आधे घंटेका बाहरी परिचय है तो क्यों मैं उनके लिये दुःखित होऊँ ? संसारमें कितनी ही स्त्रियाँ रात-दिन विधवा होती जाती हैं, उन सबके लिये क्या मुझे दुःख होता है ? तब क्यों इस एक विशेष स्त्रीके वैधव्यसे मेरे हृदयमें आघात पहुँचता है !"

मुझे ख़बर नहीं थी कि वह क्षण-भरका परिचय ही युग-युगांतका परिचय था। दरिद्र घरकी उस असाधारण युवतीके हृदयकी जिस चुंबक शक्तिने राजूको स्नेहपाशमें दृढ़ताके साथ बाँध लिया था, उसीने क्षण-भरमें मेरे हृदयपर भी अज्ञात रूपसे गहरा प्रभाव डाल दिया था।

मैंने बड़े दुःखके साथ लीलासे कहा—" नहीं लीला, यह नहीं हो सकता। राजू चाहे अपने साथ मुझे वहाँ ले चलनेके लिये राजी न हो, मैं जबर्दस्ती उसके साथ चलूँगी। तुम दोनोंकी ही तरह क्या माधवी दीदी मेरी भी दीदी नहीं हैं ? "

" क्यों नहीं दीदी ! तुम भी चलो। तुम्हें कौन रोकता है ? भैयाको तुम्हारे आनेसे बड़ी खुशी होगी। "

* * *

हेवेट रोडमें नियत स्थानपर पहुँचकर जब हमारी मोटर रुकी तो बाहर सड़कपरसे ही स्त्रियोंकी रोआ-पीटी और हाहाकारका रव सुनाई दिया। मैं मन-ही-मन यह कल्पना करते हुए चली कि माधवी दीदी सिर पीट-पीटकर, बालोंको नोचकर, धरतीपर पछाड़ खाकर रो रही होंगी। भय, आतंक और संकोचसे मेरे पाँव आगेको नहीं बढ़ते थे। मकानके हातेके भीतर जाकर क्या देखती हूँ कि माधवी दीदी नहीं, बूढ़ी अम्माँ लाशको घेरकर सिर पीटकर, धाड़ें मारकर रो रही हैं। वह बीच-बीचमें ऐसा विकट शब्द मुँहसे निकाल रही थीं कि उस दोपहरके

समय, सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशमें भी बड़े-बड़े धीरोंके दिल संभवतः दहल-दहल उठते थे। माधवी दीदीकी आँखें आँसुओंसे भींग रही थीं, पर वह शांतिपूर्वक अपनी अम्माँका हाथ पकड़कर उन्हें दिलासा दे रही थीं। करुण कंठसे कहती थीं—"अब रोनेसे क्या होगा अम्माँ? मेरा सर्वनाश होना था, सो हो गया। अब धीरज धरो। दीनू और रामू तुम्हें देखकर बौखला-से गए हैं।"

वास्तवमें दीनू और रामूके होश ठिकाने नहीं थे। वे दोनों नानीकी ओर ताकते थे, फिर रोकर अपनी अम्माँका अंचल पकड़ते थे। फिर कुछ देर तक चुप रहकर बड़े गौरसे नानीका हाल देखते थे, फिर अम्माँका अंचल पकड़कर रोने लग जाते थे और पूछते थे—"काका और नानीको क्या हुआ अम्माँ?"

उस घोर संकटके समय भी, जब अपने तन-बदनकी सुधिका रहना भी असंभव होता है, माधवी दीदी अत्यंत धैर्यके साथ अपने पुत्रोंका मुँह चूम रही थीं और उन्हें दिलासा देती हुई कहती थीं—"रोओ मत मेरे लाल! किसीको कुछ नहीं हुआ।" पर बच्चे नहीं मानते थे।

जब माधवी दीदी बूढ़ी अम्माँको समझानेकी कोशिश करती थीं तो वह और भी ज़ोरसे रोकर कहती थीं—"मैं कैसे यह दुःख सहूँ, माधवी! क्या ऐसे दुःखोंको एक-एक करके मेरे ही सिरपर सवार होना था! मैं अभागिन आज तक मर क्यों नहीं गई! एक लड़का गया, दूसरा लड़का गया, अब आज लड़की रौंड़ हुई। मेरी कोखमें क्या इसी तरह आग लगना था!" यह कहकर वह ज़ोरसे अपनी छाती पीटने लगीं। कुछ देर तक छाती पीटकर फिर बोलीं—"माधवी, तू अभी तक जीती क्यों है? क्या तूने भीतर कहीं ज़हर नहीं रक्खा है? खा क्यों नहीं लेती? मर जा बेटी, मर जा! अब जीना महापाप है!"

माधवी दीदीके कलेजेमें इन शब्द-बाणोंसे कैसी चोट पहुँची होगी, इस बातकी कल्पना सहजमें की जा सकती है। पर इन मर्म-भेदी शब्दोंको भी शांतिपूर्वक धैर्यके साथ सहकर दीदीने कहा—" मरनेसे क्या होगा, अम्माँ! अपने कर्मोंका भोग तो मुझे हर हालतमें भोगना होगा। मैं मर जाऊँ तो दीनू, रामू और छोटे बच्चेका क्या हाल होगा!"

पर बूढ़ी अम्माँ अपने होशमें नहीं थीं, नहीं तो जले दिलके फफोलोंमें नमक छिड़कनेवाली ऐसी मार्मिक बातें कभी उनके मुँहसे न निकलतीं। दीदीकी बातें उनके कानोंमें गई या नहीं, इसमें शक है। वह अपना ही रोना एक ही ढंगसे रोते चली गई।

१९

बूढ़ी अम्माँके दो पुत्र भी गुजर चुके हैं, यह बात मालूम होने पर उनका उत्कट शोक-प्रकाश, जो पहले कुछ अशोभन जान पड़ता था, अधिक अनुचित नहीं मालूम हुआ। पर माधवी दीदीका धैर्य अत्यंत आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय, अनुभवातीत था। मैं चकित और विमूढ़-सी रह गई। जब कुछ स्थिर हुई तो इधर-उधर दृष्टि फेरने लगी। एक कोनेमें उस दिनकी वही किशोरी लड़की, जो हाथमें लाल-टेन लेकर हमें नीचेतक पहुँचा गई थी, अपने हाथमें माधवी दीदीका दुधमुँहा बच्चा थामकर अत्यंत शांत और अस्पष्ट स्वरमें रोते हुए नीर-वताके साथ अश्रु वर्षण कर रही थी, और बीच-बीचमें अपने अंचलसे आँखें पोंछती जाती थी। एक तरफ़ दो-चार आदमी अर्थीको तैयार करनेमें लगे थे। एक कोनेमें राजूकी अवस्थाका एक लड़का अपना उदास मुँह लेकर खड़ा था। राजूने बड़ी स्फुर्तीसे उसके पास जाकर उसका हाथ पकड़कर कहा—" भोला, अब इस तरह उदास और सुस्त होकर

खड़े रहनेसे क्या फ़ायदा ? अम्माँ और दीदीको समझाकर दिलासा देनेका काम तुम्हारा ही है। चलो।" यह कहकर वह भोलाका हाथ पकड़कर बूढ़ी अम्माँके पास लाया।

पर भोला बहुत घबराया हुआ था और हौलदिल-सा जान पड़ता था। वह पहलेकी तरह चुपचाप खड़ा रहा। राजूने बूढ़ी अम्माँके दोनों हाथ पकड़े और दृढ़ताके साथ कहा—"अम्माँ, समझदार होने पर भी आप नासमझोंका-सा काम कर रही हैं, यह बड़े अफ़सोसकी बात है! आपको चाहिए था कि धीरज रखकर दीदीको दिलासा देतीं, पर आप खुद बेसुध बनी बैठी हैं। ज़रा शांत होकर अपने नातियोंको गोदमें बिठाइए।"

राजूके कंठस्वरमें जादू था। उसके शब्दोंसे उस शोकाच्छन्न जन-समाजके मुर्दे दिलोंमें भी उत्तेजना पहुँची। ऐसा जान पड़ा जैसे इन सम्मोहक शब्दोंसे मृतककी आत्मामें भी किंचित् चैतन्यका संचार हुआ। किसी दूसरे व्यक्तिके मुँहसे ये बातें ढोंगसे भरी और अशोभन-सी जान पड़तीं, पर राजूके कंठ-स्वरकी सहृदयता अविवादास्पद थी।

कुछ भी हो, बूढ़ी अम्माँने रोना नहीं छोड़ा। कहने लगीं—"राजू, मुझे ज़हर देकर मार डालो, बेटा! मैं अब जीना नहीं चाहती। एक दूसरी अर्थीमें ले जाकर मुझे भी चितामें जला डालो!"

राजू हैरान था। माधवी दीदी नीरव अश्रुपात कर रहीं थीं। लीला और मैं पुतलीकी तरह खड़ी थीं। इस शोक-विह्वल समाजके बीच हम दोनों बन-ठनकर, शृंगार किए हुए विराजमान थीं। लज्जा, जड़ता और आत्मग्लानिसे मैं गड़ी जाती थी। इतनी शक्ति और योग्यता भी मुझमें नहीं थी कि माधवी दीदीसे समवेदनाकी दो-चार बातें कहूँ। राजूके कार्यमें बाधा पहुँचानेके लिये ही हम दोनों आई थीं।

माधवी दीदीने भग्न कंठमें मुझसे कहा—"बैठो बहन, कब तक खड़ी रहोगी!"

भगवान्! क्या स्त्रीके कपोत-कोमल हृदयमें ऐसी वज्र-दृढ़ताका होना संभव है! मेरी आँखोंसे श्रद्धाके आँसू उमड़ चले। आज अपने कपड़ोंकी माया त्याग कर मैं निराभरणा पृथ्वी माताके ऊपर दीदीके साथ बैठ गई और बोली—"दीदी, तुम्हारे इस घोर दुःखके समय तुम्हारे रोनेमें केवल बाधा पहुँचानेके लिये ही मैं आई हूँ। मुझे माफ़ करो!"

मेरी इस बातसे दीदीके दुःखका बाँध टूट पड़ा। वह न रह सकीं और मेरे गलेसे लिपटकर फ़ूट-फ़ूटकर रोने लगीं।

अर्थी तैयार हो गई थी। राजूने लाशके पाँव पकड़े और एक दूसरे आदमीने सिर पकड़ा। जब लाशको उठाकर अर्थीपर ले जाने लगे तो बूढ़ी अम्माँने यथाशक्ति गला फाड़-फाड़कर चिल्लाना शुरू कर दिया और बाल-बच्चे भी चिल्लाकर रोने लगे। माधवी दीदीने चौंककर मेरा गला छोड़ दिया और मुँह फेरकर उठ खड़ी हुई। इस समय तक वह धीमे स्वरमें रो रही थीं। अब उन्होंने भी अपना स्वर कुछ चढ़ा दिया। उनके इस स्वरमें न मालूम क्या जादू भरा था जिससे उनका रोना भी मीठा जान पड़ता था। इस समय उनका सुंदर मुखमंडल किसी अलौकिक आभासे देदीप्यमान हो रहा था और उसमें एक उन्मत्त आवेश झलक रहा था। उनके संयमका बाँध बिलकुल टूट गया था। अज्ञात और अपरिचित पुरुषोंसे भरे हुए उस समाजके बीच उनके सिरका अंचल नीचेको खिसक गया था और उनके बिखरे हुए बालोंकी नग्न बहार स्पष्ट दिखलाई देती थी। पर इस संबंधमें बिलकुल उदासीनता प्रकट करके वह धीरे-धीरे शांत और संयत गमनसे, अर्थीकी तरफ़ आगेको बढ़ीं। तात्कालिक उत्कट दुःखकी विकरालताके कारण छिन्न, संशय और

लज्जाका लेश भी उनकी विशुद्ध आत्मामें वर्त्तमान नहीं था। महामाया नारीकी वह मोहिनी मूर्ति देखकर संभ्रमके अतलव्यापी भावसे मेरा हृदय पुलकित और कंटकित हो उठा।

राजूने किसी अज्ञात आशंकासे भयभीत होकर दीदीको आगे बढ़नेसे रोक दिया। दीदीने व्याकुल करुणाके स्वरमें अत्यंत अनुनय-विनयके साथ रोते हुए कहा—"राजू, मुझे जाने दे मेरे भैया, मत रोक, जानेके पहले एक बार मुझे उनके पाँव छूने दे, मैं और कुछ नहीं करूँगी, सिर्फ पाँव छूने दे, छूने दे! क्यों रोकता है!"

पत्थरको पिघला देनेवाला, दीदीका यह अनुनय-वचन सुनकर राजूने उन्हें छोड़ दिया। अर्थीके पास जाकर दीदीने पतिदेवके पैरोंके ऊपर अपना सिर रक्खा और उन्हें प्रणाम किया। कुछ देर तक वह इसी स्थितिमें रहीं। फिर उठकर ऊपर किसी अज्ञात देवताके प्रति हाथ जोड़कर न मालूम क्या प्रार्थना करने लगीं। फिर लौटकर अम्माँके पास चली आईं। अम्माँ पहलेकी ही तरह सारे आसमानको अपने सिरपर उठाए हुए थीं।

"राम नाम सत्य है" के रवसे आकाश गूँज उठा और मेरे हृदयमें आतंक छा गया। राजू अर्थीके साथ श्मशानको चला गया। मैं और लीला स्तब्ध होकर बैठी थीं। अर्थीके चले जानेपर हम दोनों कुछ देर तक दीदीके साथ बैठकर फिर मोटरमें सवार होकर घरको वापस चली आईं।

२०

आज तक मेरा ख्याल था कि दुर्बलता ही नारी-प्रकृतिका प्रधान लक्षण है। नारीके हृदयमें शक्तिकी कठिनता पाई जा सकती है, यह बात मेरी कल्पनाके अतीत थी। आज जब माधवी दीदीका

सर्वनाश हो गया तो उसके शून्य और आशाहीन हृदयमें दृढ़ता और धैर्यके अपूर्व सामंजस्यका जो अनुपम दृश्य मुझे दिखलाई दिया उसने मुझे चकित और मोहित कर दिया था। आज तक मुझे विश्वास था कि स्त्रियाँ तात्कालिक, प्रत्यक्ष लाभ-हानिको लेकर ही जीवन बिताती हैं। पतिके द्वारा जब तक उनकी शरीर-यात्राका निर्वाह हो सका, जब तक उनकी रक्षा हो सकी, तब तक उसे देवता मानकर पूजती हैं और जब उनका यह परम और मुख्य स्वार्थ पतिद्वारा सिद्ध नहीं हो सकता तो वह चाहे इस लोकमें विराजमान हो या परलोकमें, उससे उनका विशेष सरोकार नहीं रहता। आज तक यही धारणा मेरे हृदयमें बद्धमूल थी। पर आज मैंने देखा कि भयंकर स्वार्थहानि होते हुए भी माधवी दीदीने अविश्वसनीय धैर्यके साथ सब दुःख सहा और अप्रत्यक्षमें पतिके मिल-नकी आशा नहीं छोड़ी। अपने पतिके मृत शरीरको उन्होंने इस ढंगसे आंतरिक प्रणाम किया जैसे वह मृत्युलोकको नहीं, कहीं परदेशको जा रहे हों। एक-न-एक बार उनके दर्शन फिर मिलेंगे ही, यह ध्रुव विश्वास उनकी म्लान और करुण आँखोंसे स्पष्ट झलक रहा था। रास्ते-भर मैं मन-ही-मन उन्हें निरंतर प्रणाम करती जाती थी। आज मैंने अपने जीव-नमें प्रथम बार एक ऐसी स्त्रीको देखा जो विना किसी पुरुषकी सहाय-ताके अकेले अपने बलपर अनंत विश्वके असंख्य दुर्गमपथोंसे होकर यात्रा करनेका दम भरती थी। एक गहन रहस्यका अंधकारमय पट आज मेरी आँखोंसे तिरोहित हो गया। भक्ति, श्रद्धा और सम्मोहके भावसे गद्गद और आच्छन्न होकर मैं घर पहुँची।

मुझे आज अचानक रामायण पढ़नेकी धुन सवार हुई। सती-साध्वी सीताके पुनीत चरित्रका रस आकंठ पान करनेकी इच्छा हुई। वाल्मी-कीय रामायणका एक पूरा, बढ़िया 'सेट' मेरे पास वर्त्तमान था।

उत्तरकांड उठाकर सीता-वनवासकी कथा पढ़ने लगी। नारीके ऊपर पुरुष-जातिके चिर-कालिक अपमानका वर्णन पढ़कर मेरा खून खौलने लगा, और सुकुमारी, निस्सहाया, अबला सीताकी विवशता देखकर क्रोधसे मैं भर गई। जब निर्दयी राम सीताको अपना सतीत्व एक बार फिरसे प्रमाणित करनेके लिये बुलाते हैं तब इस वर्णनमें नारी-निर्यातन चरम सीमापर पहुँच जाता है। इस घोरतम अपमानके बदलेमें जब सीता कहती है—" तदा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति, " तब यह वाक्य पढ़कर मेरे रोंगटे खड़े हो गए और आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गई। पुस्तक बंद करके मैं मन-ही-मन रटने लगी—" तदा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति—तदा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।" मैं भी आज विवरके गर्भमें चिरकालके लिये विलीन हो जाना चाहती थी।

माधवी दीदीके वैधव्यका दृश्य देखनेपर और रामायण पढ़नेपर मैंने अपने हृदयमें अद्भुत परिवर्त्तन-सा पाया और ऐसा मालूम करने लगी जैसे मेरी आत्मामें कभी कोई अपवित्र भाव उत्पन्न ही नहीं हो सकता। एक दिव्य प्रेरणाके प्रभावसे उत्तेजित होकर मैं अत्यंत ऊर्द्धवाही वायु-मंडलमें तरंगित होने लगी। मेरी नसोंमें एक अभिनव स्फूर्ति और प्रचंड शक्तिका संचार होने लगा। इस कायाकल्पसे मुग्ध और आश्चर्यान्वित होकर मैं पलँगपर लेटी रही और नाना भावनाओंमें डूबी रही।

लाहौरमें एक वृहत् राजनीतिक कानफ्रेंस होनेवाली थी। काका और अम्माँको उसमें सम्मिलित होनेके लिये आज चार बजेकी गाड़ीसे जाना था। डाक्टर साहबको यह बात कलहीसे मालूम थी। इसलिये उन्हें स्टेशनपर पहुँचानेके लिये वह नियत समय पर आ पहुँचे। डाक्टर साहबकी सूरत देखते ही मेरा कलेजा फड़क उठा और हृदयकी स्थिति बिलकुल उलट-पुलट हो गई। कहाँ गई माधवी दीदीकी चिंता और

कहाँ गया सतीत्वके आदर्शका पुनीत विषाद! पलक-भरके भीतर ही मैं अपने रात-दिनके आमोद-प्रमोदकी दुनियामें आ गई। डाक्टर साहबका कंठ-स्वर सुनकर मेरा हृदय ठीक तालमें नाचने लगा।

२१

काका और अम्माँको पहुँचानेके लिये लीला, मैं और डाक्टर साहब भी उनके साथ चले। जब डाकगाड़ी छूट गई तो हम तीनों वापस चले आए। दिन ढलने लगा था, सूर्य छिपनेको ही था। हेमंत-कालकी संध्या एक तो वैसे ही विषाद-भरी होती है, तिस-पर आज माधवी दीदी विधवा हो गई थी, राजू श्मशानको गया हुआ था और काका और अम्माँ भी घरको सूना करके चल दिए थे। घर पहुँ-चने पर मेरे मनमें ऐसी उदासी छा गई कि बोलनेकी भी शक्ति नहीं रही। केवल डाक्टर साहब मुझे उल्लसित करनेमें समर्थ थे। पर आज वह भी किसी कारणसे उमंगहीन जान पड़ते थे। शायद लीला हमारे साथ होनेसे उनकी स्वच्छंद बातोंमें विघ्न हो रहा था।

कुछ भी हो, मेरी उदासीका सबसे बड़ा कारण था—काकाकी बिदाई। अम्माँके विना मैं बड़ी खुशीसे रह सकती थी। पर काकाका बिछोह मेरे लिये असह्य था। आज तो उनके बिछोहका दुःख सब दिनोंसे अधिक तीक्ष्ण मालूम हो रहा था। काकाको मैं बहुत प्यार करती थी, यह बात मैं जानती थी। पर इतना अधिक प्यार करती हूँ, यह बात आज प्रथम बार मुझे मालूम हुई।

इसके अतिरिक्त मैं आज एक नई और अनोखी वेदनाका अनुभव कर रही थी। इस वेदनाका संबंध राजूसे था। मेरे मनमें यह भावना रह-रहकर जागरित हो रही थी कि मेरा भाई राजू, जो पहले मुझे

अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहता था और अब उपेक्षा (संभवतः घृणा) की दृष्टिसे देखता है, एक दुःखी घरके दुःखका साक्षी होकर श्मशानको गया है—मेरा प्यारा भाई इतनी छोटी अवस्थामें आमोद-प्रमोदसे रहित होकर गंभीर-भावनाओंमें निमग्न रहकर, असंख्य मनुष्योंसे पूर्ण इस संसारमें निःसंग जीवन बिताकर स्वेच्छासे दुःख और कर्तव्यके गहन कंटकमय पथमें भ्रमण कर रहा है। इस भावनासे मेरे मनमें एक तरफ़ तो गर्व, करुणा और स्नेहका उद्रेक हो रहा था और दूसरी तरफ़ प्रतिहिंसा और मानके भावसे मेरी छाती फूल उठती थी। एक बार मैं सोचती—" क्या मैं राजूकी उपेक्षा और घृणाके योग्य हूँ ? क्या मैं इतनी हीन हूँ ? क्यों वह मेरा स्नेह स्वीकार नहीं करना चाहता ? " और यह सोचते-सोचते गुस्सेसे काँपने लगती और रोना चाहती। पर फिर उसी दम मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न होता कि मैं वास्तवमें नीच और घृणित हूँ और राजूकी बहन कहलाए जानेके योग्य नहीं हूँ। अपनी मानसिक वृत्तिकी हीनताकी कल्पना करके अवसाद और क्लांतिके भारसे मेरा हृदय दब जाता था।

भीतर आकर जब हम लोग बैठ गए तो मैंने कहा—" डाक्टर साहब, आज मेरे मनमें बड़ी उदासी छा गई है। एक स्त्रीको मैं आज अपनी आँखोंके सामने विधवा होते देख आई। "

डाक्टर साहब बोले—" इसमें आश्चर्यकी बात क्या है! "

मैंने कहा—" पर वह युवती थी। "

" बाल-वैधव्य नहीं भोगना पड़ा, यही ग़नीमत है। "

" आपका कलेजा बज्रसे भी कठोर है। "

डाक्टर साहब मुस्कुराने लगे। बोले—" संसारमें रात-दिन असंख्य स्त्रियाँ विधवा होती जाती हैं, किस-किसके लिये रोया जाय! "

माधवी दीदीसे डाक्टर साहब परिचित नहीं थे, नहीं तो कैसे उसकी उपेक्षा करते, ज़रा मैं भी देख लेती।

मैंने कहा—"भगवानसे प्रार्थना करती हूँ कि निर्मोही आदमीसे दुश्मनका भी पाला न पड़े।"

डाक्टर साहब ठठाकर हँस पड़े। बोले—"निर्मोही किसे बतलाती हो? मैं क्या निर्मोही हूँ?"

मैंने बच्चोंकी तरह मुँह बनाया।

लीलाने कहा—"अच्छा डाक्टर साहब, अगर आप निर्मोही नहीं हैं तो मेरी एक प्रार्थनापर ध्यान दीजिए।"

डाक्टर साहबने पूछा—"क्या प्रार्थना है?"

लीलाने कहा—"आप अपने ज़मानेके मेडिकल कॉलेजके लड़कोंके कई क़िस्से सुनाया करते हैं। आज भी कोई दिलचस्प क़िस्सा सुनाइए जिससे वक्त कटे और उदासी न रहे।"

डाक्टर साहबने एक क़िस्सा शुरू किया। उनका सहपाठी एक लड़का 'टी. बी. स्पेशियलिस्ट' होना चाहता था। इस रोग-विशेषके संबंधमें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त करनेकी धुन उसके सिरपर बड़ी बुरी तरहसे सवार हो गई। उसके अध्यक्षके पास जो-जो 'केस' आते थे वह मनन-पूर्वक उनका अध्ययन किया करता था। इस रोगके कीटाणुओंको अच्छी तरहसे पहचाननेके लिये वह नित्य अणुवीक्षण यंत्रद्वारा बड़े ध्यानके साथ रोगियोंके श्लेष्मा और रक्तकी परीक्षा किया करता था। होस्टलमें उसके साथी जितने भी लड़के थे वह हरवक्त मौका पाते ही उनके सारे शरीरमें हाथ लगाकर 'टी. बी. ग्लैंड' की खोज किया करता था। इस रोगके संबंधमें अनेक तथ्योंका अध्ययन करने

पर और अनेक 'केस' देखनेपर उसे धीरे-धीरे अपने संबंधमें भी वहम हो गया और वह रोज़ अपना 'टेंपरेचर' लेने लगा और नित्य अपनी नाड़ीकी गतिकी परीक्षा करने लगा। कीटाणुके भयसे पानी अपने सामने 'फ़िल्टर' कराके पीता था। रोटी, मक्खन और दूधके अतिरिक्त और सब प्रकारका खाना उसने त्याग दिया। बहुत हुआ तो कुछ फल खा लेता था। भगवानका ऐसा कोप हुआ कि उसका टेंपरेचर किसी कारणसे बढ़ गया। तब तो वह ऐसा घबराया कि तत्काल अपने अध्यक्षके पास जाकर उसने अपने शरीरकी परीक्षा करवाई। अध्यक्षके यह कहने पर भी कि उसे यक्ष्मा नहीं है, उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने अपने श्लेष्माकी परीक्षा स्वयं की। उसमें उसे 'कीटाणु' दिखलाई दिए! कॉलेजसे छुट्टी-लेकर वह घर गया और 'कंप्लीट रेस्ट' करने लगा। चौबीसों घंटे वह चारपाईपर लेटे रहता और बिलकुल हिलता-डुलता न था। मौतको बुलाने पर वह तत्काल उपस्थित होती है, यह बात प्राचीन दंतकथाओंमें पाई जाती है। उसका भी यही हाल हुआ। धीरे-धीरे वह क्षयीभूत होने लगा और उसका शरीर क्षीण होता चला गया। अंतको छः महीनेके अंदर काम तमाम!"

२२

यह क़िस्सा डाक्टर लोगोंके लिये भले ही दिलचस्प हो, पर विषाद और विरह-व्यथासे म्लान आजकी संध्यामें मृत्युकी भीतिसे पूर्ण इस कथासे मेरा सुकुमार और दुर्बल हृदय त्रस्त कपोतकी तरह कंपित होने लगा। लीलाका भी शायद यही हाल था। उसने कहा—"यही क्या आपका दिलचस्प क़िस्सा है? डाक्टर लोगोंको मरनेकी बातोंमें बड़ा आनंद मिलता है। आप लोगोंका दिल बड़ा सख्त होता है, इसमें शक

नहीं। अपने सहपाठीकी मौतका समाचार पाकर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई होगी।" यह कहकर वह चलने लगी।

मैंने कहा—"लीला, बैठती क्यों नहीं। अरी, जाती कहाँको है।"

वह बोली—"तुमने जो 'नाविल' मुझे उस रोज़ दिया था, उसे अभी मैंने पूरा नहीं किया। जाकर उसीको पढ़ती हूँ।"

यह कहकर वह चली गई।

बाहर अभी थोड़ा-बहुत उजेला था, पर भीतर अँधेरा होने लगा था। डाक्टर साहब और मैं उस कमरेमें अकेले थे। नाना भावनाओंके कारण मेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं था। संध्याकालकी इस विशेष घड़ीमें ही कोई अलौकिक माया वर्त्तमान रहती है या मेरी ही मानसिक अवस्था उस समय विकृत हो गई थी, मैं निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकती। पर एक प्रकारकी अभूतपूर्व चंचलतासे मेरा हृदय आंदोलित होने लगा। दिन-भरके विषादसे इस चंचलताका कोई संबंध नहीं था। मैं सुख-दुःख और जीवन-मृत्युके अतीत आनंदकी एक अनिर्वचनीय चेतनाका अनुभव करने लगी। ऐसा माळूम करने लगी जैसे इस मायामय स्वल्पांधकारकी हल्की छायामें मैं डाक्टर साहबके साथ बेमाळूम अन्तर्धान होकर सौंदर्य और प्रेमके किसी अभिनव लोकमें निर्भय और निर्द्वंद्व होकर विचर सकती हूँ और इसीमें ही मेरे छिन्न-विच्छिन्न, भ्रष्ट जीवनकी सार्थकता है। कोई अज्ञात प्रेरणा मेरे कानोंमें कहने लगी—"जीवनके रात-दिनके झंझट और भय-संशयसे मुक्त होनेका केवल यही क्षणिक समय है; यदि किसी नव-जीवनकी आशामें मरना है तो इसी समय मरो अथवा चिरांधकारके गहन गह्वरमें सदाके लिये विलीन होना है तो इसी समय होओ—यदि यह समय गया तो जन्म जन्मांतरमें तुम्हें छिन्न मेघकी तरह विपुल आकाशमें व्यर्थ और निरुद्देश्य भटकना पड़ेगा।"

मेरा सर्वांग कंपित हो रहा था और बत्तीका बटन दबानेका साहस नहीं होता था। कमरेके अंधकारको भेदकर सांध्य-गहनके अस्पष्ट और अस्फुट प्रकाशकी स्तिमित रेखाएँ हम दोनोंके मुखोंपर छायाकी मायाका खेल खेल रही थीं। हम दोनों स्तब्ध और निःशब्द थे। अकस्मात् डाक्टर साहबने अपने पैरोंसे मेरे पाँवोंको स्पर्श किया। मेरे सारे शरीरमें एक बिजली-सी दौड़ गई। मेरे रक्तमें उन्मत्तता व्याप्त हो गई। मैंने अपनेको सँभालनेकी चेष्टा की। क्षण-भरमें सहस्र भावनाएँ मेरे मस्तिष्कसे होकर गुज़र गईं।

अचानक मुझे अपने शांत, उत्तेजना-विहीन बाल्य-जीवनकी याद आई। उस मधुर और प्यारी स्मृतिसे मेरे रक्तका उत्ताप धीरे-धीरे शीतल होने लगा, और उस शीतलताकी करुणासे मेरा हृदय गद्‌गद् हो-गया। इतने अल्प समयमें मेरे हृदयाकाशमें एक भयंकर तूफ़ान उठकर अंतको शांतिके साथ गंभीर मेघोंका श्रांत वर्षण भी हो गया। किसी अज्ञात कारणसे मेरे स्मृति-पटलमें मेरे जीवनके एक ऐसे दिनका चित्र अंकित हुआ जब खूब ज़ोरसे पानी बरसनेके बाद पूर्वाकाश इंद्रधनुषकी मनोहर छटासे विभासित हो गया था, पत्तोंके झुरमुटोंसे होकर जलकण सूर्यके प्रकाशमें मुक्ताकी तरह नीचेको टपकते जाते थे और मैं अपने भावी जीवनके उल्लासमें बाहर बगीचेम विना किसी कारणके इधर-उधर दौड़ रही थी। आजकी मानसिक स्थितिसे इस घटनाका क्या संबंध था, ठीक बतला नहीं सकती। पर इस स्मृतिके उदित होते ही मेरी आँखें उमड़ चलीं। उस अस्पष्ट आलोकमें भी शायद डाक्टर साहबने मेरे आँसुओंको झलकते देख लिया। मेरा हाथ पकड़कर बोले—" लज्जा! "

पुलकित होनेके कारण मेरा गला रुँध गया था। बोलनेसे मेरी कमज़ोरी पकड़ी जायगी, इस ख्यालसे मैं चुप रही।

मैं अपने पलँगपर बैठी हुई थी। डाक्टर साहब मुझे निरुत्तर देखकर या अन्य किसी कारणसे चट अपनी कुर्सी परसे उठकर मेरे साथ ही मेरे पलँगपर बैठ गए और गलेमें हाथ डालकर धीमे स्वरमें बोले—"चुप क्यों हो?"

मैं रह न सकी और उनकी गोदमें मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर बेअख्तियार रोने लगी। कुछ देरके बाद जब मेरा सिसकना बंद हो गया तो मैं फिर भी उसी अवस्थामें उनकी गोदके ऊपर अपना सिर रक्खे रही। आकुल मोहके कारण उस स्थितिसे हिलने-डुलनेकी शक्ति भी मुझमें नहीं थी।

अचानक बाहरसे चिर-परिचित कंठस्वर वायुमंडलको तीरके समान चीरता हुआ मेरे कानोंमें पहुँचा—"दीदी!"

इस शब्दसे मेरा हृदय गूँजते ही राजू दरवाज़ेपर आकर खड़ा हो गया। मैं हड़बड़ाती हुई सँभलकर उठ बैठी। एक झलक देखकर राजू उलटे पाँव लौट चला।

२३

कलेजेका धड़कना, शरीरका थरथराना, धरतीमें समा जानेकी इच्छा रखना, आदि कई ऐसे प्रचलित और निर्दिष्ट मुहावरे हैं जिनका उपयोग मैं अपनी उक्त स्थितिका वर्णन करनेमें कर सकती हूँ। पर क्या इन मुहावरोंसे सचमुच पाठक उस घोर अनर्थका, इस चिर-दुर्भागिनीके जीवनके उस जटिलतम संकटसे संकुल स्थितिका यथार्थ अनुभव करनेमें समर्थ हो सकेंगे?

ज़रा एक बार चित्तवृत्तिको एकाग्र करके कल्पना कीजिए। मान लीजिए आप एक नव-युवती हैं। आप किसी पुरुषके प्रणय-पाशमें आबद्ध हैं। आपसे छोटा आपका एक भाई है जिसकी असहनशील

प्रकृतिके कारण अप्रसन्न होने पर भी आप उसे प्यार किए विना नहीं रह सकते। उसके उन्नत स्वभावके गांभीर्यके कारण आपके हृदयमें उसके प्रति संभ्रमका भाव भी वर्त्तमान है। पर जिस पुरुषसे आपका प्रेम है उसे आपका यह भाई किसी विशेष कारणसे अत्यंत घृणाकी दृष्टिसे देखता है, और फलतः वह नहीं चाहता कि उसकी बहन ऐसे पुरुषको चाहे। पर बार-बार वह आपको उसी घृणित और अनिच्छित पुरुषके साथ देखता है, और इसी कारण भाई-बहनके चिर-जीवनके गाढ़े स्नेहमें विघ्न आ उपस्थित होता है। अंतको एक दिन संध्याके प्रायांधकारमें आपका वही भाई आपको एक स्तब्ध कमरेके भीतर उसी पुरुषकी गोदमें लेटे हुए पाता है और एक झलक देखकर लौट जाता है।

किसी ग्रीक उपाख्यानमें मैंने पढ़ा था कि गॉर्गनका मुख देखते ही दर्शक तत्काल प्रस्तर बन जाता था। राजूका पलक-पात अंधकारके कारण अस्पष्ट होनेपर भी उससे मैं पत्थरसे अधिक जड़, मृत और निर्जीव बन गई। वज्र-स्तंभित-सी होकर कुछ देर तक बिलकुल संज्ञाशून्य बैठी रही। जब कुछ चैतन्य हुआ तो मुझे उन्मादने आ घेरा। मैं जोरसे चिल्लाना चाहती थी और अपने बालोंको नोचनेकी इच्छा होती थी। कुछ ही देर पहले डाक्टर साहबके स्पर्शसे मैं रोमांचित हो रही थी। अब उनके शरीरको छूकर बहनेवाली वायुके भी स्पर्शसे और उनके निःश्वाससे उत्कट वितृष्णा और नारकीय घृणाके कारण मेरा हृदय आलोड़ित होने लगा। डाक्टर साहब अभी तक मेरे पलँगपर ही बैठे थे। मैंने धीमे स्वरमें तीव्रताके साथ कहा—“ डाक्टर साहब, आप जाइए। मेरा सर्वनाश होना था सो हो गया। अब आप जाइए!” उस अंधकारमें शायद मेरी आँखोंकी चिनगारियाँ साफ़ दिखलाई दे रही थीं। भीत होकर डाक्टर साहबने पूछा—“ क्यों?”

उन्हें यह घटना बिलकुल साधारण जान पड़ती थी। हायरी पुरुषों-की निर्बोधिता! मैंने तमककर कहा—"नहीं, नहीं, आप फौरन यहाँसे उठकर चले जाइए!" यह कहकर मैंने बत्तीका बटन दबा दिया। सारा कमरा प्रकाशसे जगमगाने लगा।

क्रोधित और अपमानित होकर वह चट-से अपनी साहबी टोपी और 'ह्विप' पकड़कर उठ खड़े हुए और लाल-लाल आँखोंसे एक बार मुझे घूरकर सीधे चल दिए। अपमानित प्रेमकी प्रतिहिंसाका भाव उनकी उत्तप्त आँखोंमें स्पष्ट झलकते हुए दिखलाई दिया था। पर इस बातपर विशेष ध्यान देनेकी स्थिति उस समय मेरी नहीं थी। आज दिनके समय रामायण पढ़ा था। मुझे बार-बार वही पद याद आता था—"तदा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।"

२४

रातको खाना खानेकी रुचि बिलकुल नहीं थी। पर न खानेसे नौकर-चाकरोंके मनमें संदेह उत्पन्न होगा और हठ तथा अनुरोधका अभिनय सहन करना पड़ेगा, इस कारण मैंने अपने ही कमरेमें खाना लानेका 'आर्डर' दे दिया। थोड़ा-बहुत खाकर लेटनेकी तैयारी कर ही रही थी कि लीलाने किवाड़ खटखटाते हुए कहा—"दीदी, खोलो!"

मैं नित्य लीलासे अपने साथ सोनेका अनुरोध किया करती थी। पर आज उसके आनेसे मुझे बिलकुल प्रसन्नता नहीं हुई—मेरी एकांत-चिंतामें विघ्न ही हुआ। लीला नित्यकी तरह प्रसन्न, निश्चित और निधड़क थी। बोली—"दीदी, आज बड़ी जल्दी सोनेकी तैयारी करने लगी हो!"

मैंने मुरझाई हुई आवाज़में कहा—" हाँ, आज नींदने बड़ा ज़ोर पकड़ा है।"

लीला नित्यकी तरह हँसी-खुशीकी बातें करनेके लिये लालायित हो रही थी, मेरी इस बातसे उसका मुख म्लान हो आया। मन मारकर वह अपने पलँगपर जाकर लेट गई।

मेरे मस्तिष्ककी नसें बहुत उत्तेजित हो रही थीं। कितनी ही बातें सोचना चाहती थी, पर कुछ भी ठीक तरहसे नहीं सोच सकती थी। फिर भी एक बात रह-रहकर मेरे हृदय और मस्तिष्कमें एक साथ ही काँटेकी तरह चुभ रही थी। वह यह कि मैं कलसे राजूको अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी? डाक्टर साहबके साथ अकेले बैठे मुझे राजूने बहुत बार देख लिया था, इसमें संदेह नहीं। पर आजकी बात ही बिलकुल दूसरी थी। आज मैं अपनी सफ़ाईमें किसी प्रकारकी कैफ़ियत नहीं दे सकती थी। मैंने सोचा—"राजूके हृदयमें यदि किसी जघन्यसे भी जघन्य बातका संशय उत्पन्न हो तो मैं उसके निवारणके लिये एक अक्षर भी किस मुँहसे निकाल सकती हूँ? यद्यपि भगवान्‌की कृपासे मैं अब तक शारीरिक पापसे बची हूँ, तो भी आजकी स्थितिके कारण कैसे राजूको इस बातका विश्वास दिला सकती हूँ? भगवान्! मेरे लिये कोई भी उपाय तुमने नहीं रख छोड़ा!" सोचते-सोचते मैं प्रबल वेदनासे छट-पटाने लगी और उत्कट मानसिक व्यथाके कारण मेरे मुँहसे बेअख्तियार कराहनेकी तीखी आवाज़ निकल पड़ी।

आवाज़ सुनकर लीला चौंककर उठ बैठी और उसने घबराकर पूछा—" दीदी, क्या हुआ?"

मैंने कहा—" कुछ नहीं हुआ मैना, तू सो जा। चिंताकी कोई बात नहीं।"

पर वह बहुत डरी हुई थी, इसलिये कुछ देर तक बैठी रही। वह शायद चाहती थी कि मैं उसके साथ बातें करूँ। पर मैं चुप रही। लाचार होकर वह फिर लेट गई।

मुझे बहुत देर तक नींद नहीं आई। दो बजे तक गिर्जेकी घड़ीमें घंटोंके बजनेका शब्द सुनती रही। दो बजेके बाद आँखें लगीं। आँखें लगते ही कितने ही अर्थहीन, अस्पष्ट और भयंकर स्वप्नोंसे मेरा मस्तिष्क आच्छन्न हो गया। उन अस्पष्ट स्वप्नोंके बीच भी एक स्पष्ट अर्द्ध-वाक्य मेरे मुँहसे निकलता जाता था—"विवरं दातुमर्हति—विवरं दातुमर्हति!" थोड़ी देर बाद नींद उचट गई। फिर आँखें लगीं और फिर उसी प्रकारके विकट स्वप्न दिखाई देने लगे। फिर आँखें खुलीं, फिर आँखें लगीं। सारी रात इसी तरहकी बेचैनीमें कटी। पर सुबहको बड़ी मीठी और गाढ़ी नींदने मुझे धर दबाया। नौ बजेके क़रीब आँखें खुलीं।

२५

बाह्य जगत्के अंधकार और प्रकाशका अंतर्जगत्से बड़ा भारी संबंध रहता है। विगत रात्रिके अंधकारमें मुझे अपनी स्थिति अत्यंत जटिल और विकट मालूम होती थी, पर प्रातःकालके उज्ज्वल प्रकाशमें मुझे आशातीत सांत्वना प्राप्त हुई। मैंने सोचा—"कल रातकी घटना उस क्षणके लिये चाहे कैसी ही भयंकर क्यों न हो, पर वास्तवमें उसके कारण अधिक चिंतित होनेकी कोई बात नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि राजूके हृदयमें उस समय बड़ी गहरी चोट पहुँची होगी, पर अभ्यासवश वह धीरे-धीरे उस बातको भूल जायगा। इतनी बार उसने मुझे डाक्टर साहबके साथ अकेले बैठे देखा है, और जितनी बार देखा है उतनी बार वह नाराज़ हुआ है; पर फिर-फिर इस बातको भूलकर

वह 'दीदी' कहके पुकारता हुआ मेरे पास आया है। मेरा ऐसा उदार और बुद्धिमान भाई अबकी बार भी दो-एक दिनमें कलकी बात भूल जायगा और मन-ही-मन मुझे क्षमा करके मेरे पास अपना स्नेहसे भरा हुआ प्यारा मुखड़ा लेकर चला आयगा।"

आशासे भरी यह बात सोच-सोचकर मैं उल्लसित हो उठी और मेरी सारी दुश्चिंता किसी जादूके स्पर्शसे तिरोहित हो गई।

प्रातर्भोजन मैंने अपने ही कमरेमें किया। लीलाने शायद राजूके ही साथ खाना खाया। खाना खाकर लीला स्कूलको चली गई। तबियत ठीक न होनेसे मैं घरपर ही रही। एक किताब खोलकर पढ़ने लगी। दो-चार पेज भी न पढ़ पाई थी कि आँखें झपने लगीं। किताब बंद करके पलँग-पर लेट गई। तत्काल प्रगाढ़ निद्रामें मग्न हो गई। प्रायः एक घंटेके बाद आँखें खुलीं। पर सारे शरीरमें ऐसी थकावट जान पड़ती थी जैसे किसीने मार-मारकर मेरी हड्डियाँ तोड़ डाली हों। आलस्य, दुर्बलता और जड़ता-के कारण उठनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी। इसलिये लेटी रही। फिर नींद आ गई।

अबकी बार जब आँखें खुलीं तो दिन ढल चुका था। गत रात्रिमें जिस भीषण भीतिका अनुभव मैंने किया था, वह अब फिर धीरे-धीरे जागरित होने लगी। प्रातःकाल मैंने समझा था कि मेरा भय अमूलक और व्यर्थ है। पर मैलेरिया बुखार जिस प्रकार बीचमें टूटकर फिर-फिर नियत समयमें धर दबाता है उसी प्रकार अंधकारके धीरे-धीरे बढ़ते ही पिछले दिनकी आशंका उदित होने लगी। मैंने सोचा—" कल संध्या-के समय जो घटना हो गई है, वह किसी प्रकार भी साधारण नहीं थी। राजूके साथ मेरा जो विच्छेद हो गया है वह अब जीवन-भर स्थायी रहेगा। राजू अब कभी मेरा मुँह देखना नहीं चाहेगा। वह अब किसी

तरह नहीं मनाया जा सकता। इस घटनासे मेरा जीवन कलंकित लांछित और निरर्थक हो गया है। "

ऐसी स्थितिमें स्त्रियोंमें बहुधा आत्मघातकी प्रवृत्ति जागरित होती है। पर मेरे हृदयमें मरनेकी इच्छा लेशमात्र भी उत्पन्न नहीं होती थी। मरनेकी इच्छा तो दूर रही, मृत्युकी कल्पना ही किसी भी रूपमें मेरे मनमें जागरित नहीं हुई। पर मेरा भावी जीवन निरानंदमय है, इस विश्वासके कारण मुझे शून्यके अवसादने आ घेरा। काका और अम्माँ घर-पर नहीं थे, डाक्टर साहबके साथ अनबन हो गई थी और राजूकी आँखोंका तो मैं काँटा ही बन चुकी थी। अपने जले दिलके फफोले मैं किसके आगे फोड़ती! मेरी उस दशाका केवल अनुभव ही किया जा सकता है, वह समझाई नहीं जा सकती।

डाक्टर साहब आज नहीं आवेंगे, यह बात मैं अच्छी तरह जानती थी, पर एक क्षीण आशा भी मेरे मनमें वर्त्तमान थी। प्रतीक्षा करते-करते अँधेरा हो आया और खानेका समय आ गया। पर उनका आना असंभव था और वह आए भी नहीं। भयंकर निराशा छा गई। यदि वह सचमुच आ गए होते तो मुझे प्रसन्नता होती, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बल्कि संभव तो यही था कि उनके आनेपर मैं अधिक सशंकित हो उठती। पर फिर भी उनके न आनेसे निराशा ही हुई।

रातको फिर नींदका वही हाल रहा और बीच-बीचमें तंद्रा आनेपर उसी प्रकारके विकट स्वप्न दिखलाई दिए।

दूसरे दिन सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशमें मैं फिर आशान्वित हो उठी और पहले दिनकी ही तरह, रातकी सारी दुश्चिंता दूर हो गई। केवल एक बातके लिये मैं बहुत पछताने लगी। वह यह कि क्षणिक उत्तेजनाके कारण बुद्धिभ्रष्ट होनेपर मैंने डाक्टर साहबको अपमानित करके निकाल

दिया था। जिनको लेकर ही मेरा जीवन था, उन्हींके साथ मेरा संबंध टूट गया। मैंने सोचा—"राजू तो मेरा ही भाई है—कभी-न-कभी उसके साथ समझौता होगा ही। पर तिरस्कृत प्रेमीको अब किस प्रकार मना सकती हूँ?" पश्चात्तापका यह काँटा मेरे मनमें गड़ा ही रहा।

दिन-भर मेरी भावनाओंमें उलट-फेर होता रहा। कभी एक बात सोचती थी, कभी ठीक उसका उलटा। अँधेरा होते ही फिर मेरा दिल आशंकाके कारण दहलने लगा। इसी प्रकारके चक्रमें चार दिन बीत गए। न राजूके ही भावमें कोई परिवर्तन दिखलाई दिया और न डाक्टर साहबके ही दर्शन हुए।

२६

पाँचवे दिन काका अम्माँके साथ वापस चले आए। मेरी जानमें जान आई और चित्त कुछ स्थिर हुआ। उनके घर पहुँचते ही मैं कान्फ्रेंसके सब समाचार पूछने लगी। क्या-क्या प्रस्ताव पास हुए, हिंदू-मुस्लिम विरोधकी समस्याका समाधान किस प्रकार किया गया, विदेशी-बहिष्कारके संबंधमें किन-किन नए उपायोंकी खोज हुई, इत्यादि और भी कई प्रश्न मैंने किए। काकाने अत्यंत स्नेह और धैर्यके साथ मुझे सब बातें समझाईं। इन सब बातोंको जाननेके लिये मैं बड़ी उत्सुक थी, सो नहीं। पर चार दिनके विच्छेदके बाद आज काकाको पाकर उनसे बातें करनेके लिये मैं आकुल हो रही थी।

जब कान्फ्रेंसके संबंधमें सब बातें हो चुकीं तो काकाने पूछा—"राजू कहाँ है? वह नहीं दिखलाई देता।"

लीला वहींपर थी। उसने कहा—"भैयाकी तबियत आज तीन-चार दिनसे खराब है। मैं कितनी ही बार उनके पास गई हूँ, पर वह

कोई बात मेरे साथ नहीं करते। पलँगपर लेटे-लेटे उपनिषत् या इसी तरहकी कोई किताब पढ़ते हैं और मुझसे कह देते हैं कि मेरी तबियत ठीक नहीं है। क्या हुआ, बुखार है या नहीं यह कुछ नहीं बतलाते।"

काकाने शंकित होकर मुझसे पूछा—"क्या हुआ, तुम्हें कुछ मालूम है?"

मैं क्या जवाब देती! राजू पलँगपर लेटे-लेटे अपनी तबियत खराब बतलाता है, यह बात भी मुझे मालूम नहीं थी। और जो एक कारण मुझे मालूम था उसे मैं बतलाती कैसे!

मैंने कहा—"मुझे तो कुछ भी ख़बर नहीं।"

काकाके चेहरेमें उनके स्वाभाविक व्यंगका तीक्ष्ण भाव प्रस्फुटित हो उठा। बोले—"भाईके लिये बहनका प्रेम हो तो ऐसा हो। तीन दिनसे वह पलँगपर लेटा है, और तुम्हें अब तक ख़बर नहीं कि क्या हुआ! खूब!"

उनकी आँखोंमें स्नेहपूर्ण तिरस्कारकी छाया घनीभूत होने लगी। मैं उनकी ओर ताक न सकी और गुरुतर अपराधके भारसे दबकर मैंने सिर नीचा कर लिया।

उसी दम उठकर काका राजूका हाल मालूम करने चले। अम्माँ और लीला भी उनके साथ हो लीं। मैं पीछे-पीछे दबे पाँव अपराधिनीकी तरह धड़कता हुआ कलेजा लेकर चलने लगी। राजूके कमरेमें जब हम लोग पहुँचे तो देखा कि कमरा ख़ाली पड़ा है। राजू वहाँ नहीं था।

लीला ने कहा—"कुछ ही देर पहले तो भैया यहीं थे। अभी-अभी न मालूम कहाँ चले गए!"

सबको आश्चर्य हुआ। नौकरोंने घर-भरमें ढूँढ़ा, ऊपर छतपर जाकर देखा, बग़ीचेमें तलाश की, पर कहीं पता न चला। कोई मोटर या

फिटन भी वह साथमें नहीं ले गया था। काकाके आनेका समाचार सुनकर ही क्या वह कहीं चंपत हो गया? काका और अम्माँका आगमन क्या उसे सचमुच इतना अखरा? यह आश्चर्यकी ही बात थी, इसमें संदेह नहीं।

हम लोग सब चकित होकर लौट चले। पर काकाको शायद यह जानकर तसल्ली हुई कि राजू पलंगपर लेटे रहनेको बाध्य नहीं है। आनंदपूर्वक हँसकर बोले—"तबियतके ख़राब होनेका यह ढंग बिलकुल नया है! मरीज़का पलंगपर लेटे रहना तो दूर रहा वह कमरेसे ही ग़ायब है!"

राजूका स्वास्थ्य सुदृढ़ और असाधारण था। साधारणतः उसकी तबियत ख़राब होनेकी बातपर कोई विश्वास नहीं करता था। इसका एक कारण यह भी था कि वह किसी कारणसे रुष्ट होनेपर झूठमूठ अपनी तबियत ख़राब बतला देता था। सब लोगोंको यह बात मालूम थी। काकाने शायद आज भी यह अनुमान कर लिया कि वह किसी कारणसे नाराज़ है। इसलिये उसकी अस्वस्थताकी बात हँसीमें उड़ा दी।

पर मेरा हृदय किसी अज्ञात आशंकासे रह-रहकर बड़े ज़ोरोंसे धड़क रहा था और किसी तरह शांत नहीं होता था।

२७

रातको भोजनके समय हम लोग बहुत देर तक टिके रहे, पर राजू नहीं आया। कहाँ गया, इस बातका भी पता नहीं चलता था। जाड़ेके दिनोंमें राजू रातको सात बजेके बाद कभी घरके बाहर कहीं नहीं रहता था—पेश्तर ही घर पहुँच जाता था। आज यह नई बात थी। जब बहुत देर तक टिके रहनेके बाद भी नहीं आया तो

सबने अनिच्छाके साथ खाना खाया। खाना खा लेनेके बाद भी 'ड्राइंग रूम'में बैठकर हम लोग उसीकी बाट जोहते रहे। बीच-बीचमें बातें होती जातीं थीं, पर सबका ध्यान राजूके ही प्रति लगा हुआ था। जरा भी आहट पाते ही सब सजग हो उठते थे। पर सब व्यर्थ था। राजू नहीं आया। सबके मनमें शंका बढ़ती जाती थी। काका हजार अपनी चिंता छिपानेकी चेष्टा करनेपर भी नहीं छिपा सकते थे। अंतको जब साढ़े ग्यारह बज चुके तो लीलाकी आँखें झपते देखकर काका कुर्सीपर-से उठकर बोले—"लज्जा, अब बैठे रहना फ़िजूल है। लीला और तुम अब जाकर सो रहो।" उनकी आवाज़ दबी हुई थी।

मेरे हाथ-पाँव काँप रहे थे और उठने-बैठनेकी भी शक्ति मुझमें नहीं रह गई थी। फिर भी बलपूर्वक उठी और लीलाका हाथ पकड़कर चलनेकी तैयारी करने लगी।

अम्माँने व्याकुल दृष्टिसे काकाकी ओर देखकर अत्यंत करुण और कंपित स्वरमें कहा—"क्या होगा ? कहीं किसी मोटर या गाड़ीके नीचे दब-दबा तो नहीं गया ? क्या पुलिसमें ख़बर नहीं दी जा सकती ?"

अम्माँने जो बात सुझाई वह बड़ी भयंकर थी। लीला सुनकर थर-थर काँपने लगी। मैं भी कम नहीं घबराई।

काका खीझकर बोले—"क्या बेजा बातें करती हो ! पुलिस-वुलिसमें ख़बर देनेकी कोई ज़रूरत नहीं। वह ख़ुद आ पहुँचेगा।"

लीलाको कमरेमें पहुँचकर बिस्तरेपर लेटते ही नींद आ गई। पर मुझे तो वैसे ही उन्निद्राका रोग था, तिसपर आज भयंकर आशंकासे उत्तेजित हो उठी थी। इसलिये लेटे-लेटे अनेक दुश्चिंताओंमें निमग्न हो रही।

प्रायः एक घंटेके बाद बाहर फाटकके बंद होनेका शब्द सुनाई दिया। चौकीदार शायद अभी तक जगा हुआ था और संभवतः राजू आ गया था,

और उसके आनेपर उसने फाटक बंद कर दिया था। फाटक बंद होनेके कुछ ही देर बाद राजूका कमरा खुलने और फिर बंद होनेकी आवाज़ आई। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि राजू आ गया है और मेरी दुश्चिंता बहुत-कुछ दूर हो गई।

मस्तिष्कका भार हलका होनेसे मेरी आँखें झपने लगीं। निद्रा और जागरणके बीचमें एक अवस्था होती है। धीरे-धीरे मैं उसी अवस्थाको प्राप्त हो गई। कितनी देर तक यह अवस्था रही, ठीक बतला नहीं सकती। अचानक बन्दूकके चलनेकी-सी एक धड़ाकेकी आवाज़ सुनाई दी और मैं चौंक पड़ी। अपने कमज़ोर दिलकी वह हालत मैं कैसे लोगोंको समझाऊँ! ऐसा मालूम होने लगा जैसे अभी मेरे हृदयकी गति रुककर दम निकलनेको तैयार है।

क्या हुआ, आवाज़ कहाँसे आई, कुछ मालूम नहीं हुआ। मैं बड़ी उत्कंठासे इस बातकी बाट जोहती रही कि संभवतः कोई नौकर मेरे पास आकर इस रहस्यका मर्मोद्घाटन कर जायगा।

प्रायः पंद्रह मिनटके बाद राजूके कमरेका किवाड़ खुलनेका शब्द फिर सुनाई दिया और तत्काल ही किसीके चीख़नेकी आवाज़ आई। वह विकट आर्तरव सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। सारे शरीरका रक्त सूख गया। माजरा क्या है, यह बात कुछ भी समझमें नहीं आती थी।

थोड़ी देर बाद किसीने आकर बाहरसे मेरे कमरेका किवाड़ खटखटाया। भीत होकर मैंने पूछा—"कौन है?"

काकाके 'पर्सनल एसिस्टेंट' गौरीशंकर दुबेकी आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने कहा—"लज्जा, उठो, किवाड़ खोलो, सर्वनाश हो गया है।"

"क्या हुआ?" कहकर मैं रोती हुई पलँगपरसे उठ बैठी और चिटख़नी खोल दी।

"राजूने अपनी छातीमें गोली मारकर आत्महत्या कर डाली है!" कहकर दुबेजी बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रोने लगे।

वज्र-स्तंभित होकर मैंने कहा—"ऐं! यह आप क्या कहते हैं, दुबेजी!"

मुझे चक्कर आने लगा था इसलिये मैं दीवारके सहारे खड़ी हो गई।

दुबेजीने कहा—"क्या कहूँ! कहने-सुननेकी कोई बात अब न रही। लीला! अरी लीला!" कहकर वह लीलाको जगाने लगे। राजूके कमरेसे अम्माँके रोने-चिल्लानेकी दिल दहलानेवाली आवाज़ सुनाई दे रही थी।

लीला गाढ़ निद्रामें मग्न थी। जब दुबेजीने हाथसे धक्का दिया तब वह हड़बड़ाती हुई उठ बैठी।

"क्या हुआ, दुबेजी?"

"राजू चल दिया।" दुबेजीका गला काँप रहा था।

लीलाने घबराकर पूछा—"कहाँको?"

"उसने अपनेको गोली मार ली।"

यह कहकर भावावेग न रोक सकनेके कारण दुबेजी फिर एक बार व्याकुल होकर रो पड़े।

"भैया, क्या किया! भैया! भैया!" कहकर रोती, बिलखती और सिर पीटती हुई लीला बावली-सी होकर पलँगपरसे नीचे कूद पड़ी।

दुबेजीके साथ अर्द्धचेतनावस्थामें दुर्घटनाके स्थलपर पहुँचकर देखती क्या हूँ कि राजू—मेरा प्यारा भाई, हमारे कुटुंबका एक मात्र गौरव राजू—नीचे फ़र्शपर हाथ-पाँव पसारकर मृतावस्थामें पड़ा है और उसके कपड़े उसकी छातीके खूनसे तर हैं। नीचे एक पिस्तौल भी पड़ी हुई थी। अम्माँ सिर पीट-पीटकर, अपना सिर राजूकी छातीके ऊपर रखकर

हाय-हत्या मचाकर रो रही थीं। काका निर्विकार भावसे ऊपर खड़े-खड़े भाग्य-नियंताकी यह निष्ठुर लीला देख रहे थे। कुछ कहनेकी, किसीको कुछ समझाने-बुझानेकी शक्ति उनमें नहीं थी। लीला आते ही यह सब दृश्य देखकर, धरतीपर पछाड़ खाकर, अपने विदीर्ण क्रंदनसे नैश-वायुको चीरकर कहने लगी—" भैया! यह अनर्थ क्या हुआ भैया! मैं अब क्या करूँ भैया! भैया! भैया!—"

अर्द्धरात्रिके उस विकट भौतिक कांडकी विभीषिकाका वर्णन मैं किस प्रकार करूँ? यह बात मेरे सामर्थ्यके बाहर है। इसलिये इस संबंधमें कुछ लिखना ही वृथा है।

मुझे रोना नहीं आ रहा था। मैं स्वप्नावस्थाकी तरह, विभ्रांत आँखोंसे केवल राजूकी ओर देख रही थी। कभी खूनसे तर उसकी सुदृढ़ छाती-पर दृष्टि डालती और कभी उसके चैतन्यविहीन, सुंदर, शांत और प्रसन्न मुखमंडलके प्रति टकटकी बाँधे रहती।

धीरे-धीरे मेरा मस्तिष्क निर्जीव-सा होने लगा और सिरमें चक्कर आने लगा। मैं मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़ी।

२८

जब आँखें खुलीं तो मैंने अपनेको उसी अवस्थामें, वहीं नीचे फ़र्शपर, पड़े पाया। स्पष्ट ही मालूम हो गया कि किसीने मुझे जगानेकी चेष्टा नहीं की, किसीको लेशमात्र भी मेरी चिंता नहीं हुई। जिस महाशोकमें सारा कुटुंब मग्न था उसके आगे मेरी मूर्च्छा—मेरी मृत्यु तक नगण्य थी। 'रिवाल्वर' तो वहींपर पड़ा था, एक-आध गोली उसमें अवश्य ही बची होगी। तब क्यों काकाने मेरी छातीपर तत्काल गोली नहीं चलाई? इस पापिनी, कुलबोरिनी, हत्यारी लड़कीकी मूर्च्छाके

प्रति उत्कट अवज्ञा प्रकट करके उन्होंने उचित ही किया था—पर चिर-कालके लिये उसका अस्तित्व ही मिटा देनेमें क्यों कोई बात उठा रक्खी?

अम्माँ और लीलाका रोना अभी तक उसी प्रकार जारी था। राजूकी मृतदेहको घेरकर अभी तक लोग उसी प्रकार खड़े थे। मूर्च्छा भंग होनेपर निहायत कमज़ोरीके कारण मुझमें उठनेकी न तो शक्ति ही थी और न इच्छा। मुझे फिर स्मरण हो आया कि जो आतंककारी घटना आज हो गई उसके बाद अब मरने, मूर्च्छित होने, बैठने और उठनेमें कोई भेद ही नहीं रह गया है—संसारकी समस्त क्रियाएँ शून्य-की गाढ़तम काली छायासे आच्छन्न होनेके कारण एक रूपमें परिणत हो गई हैं। यह बात सोचते-सोचते फिर मेरा मस्तिष्क धीरे-धीरे विह्वल हो आया, और मैं फिर एक बार मूर्च्छित हो गई।

दूसरी बार आँखें खुलनेपर भी मैंने अपनेको उसी अवस्थामें पाया। किसीने मुझे उठाकर पलँगपर नहीं रक्खा था। इस बातके लिये मेरे मनमें दुःख बिल्कुल भी नहीं हुआ और न किसीके प्रति अभिमानका भाव ही उत्पन्न हुआ।

रात बीत चुकी थी, उजाला हो गया था। लोग उसी तरह खड़े थे। पुलिसके दो-एक आदमियोंकी लाल पगड़ियाँ देखनेमें आईं। "हा राम!" कहकर मैं प्रबल चेष्टा करके उठ खड़ी हुई।

'पोस्ट मार्टम' हो रहा था। पुलिसमें शायद पहले ही ख़बर भेज दी गई थी। इस समय 'रिवाल्वर' को लेकर विवाद मचा हुआ था। असहयोगी होनेके कारण काकाकी सभी बंदूकों और 'रिवाल्वरों'के लाय-संस ज़ब्त किए गए थे। लायसंस ज़ब्त होनेके बाद भी यह 'रिवाल्वर' कहाँसे आया, इस बातपर विवाद चल रहा था।

काकाने राजूके हाथका लिखा एक कागज़ दिखलाया। पीछे मुझे मालूम हुआ कि राजू अपने जिस मित्रसे 'रिवाल्वर' माँग लाया था उस कागज़में उसका उल्लेख किया गया था। रिवाल्वर और कागज़ पकड़कर पुलिसवाले बिदा हुए। जो डाक्टर महाशय परीक्षाके लिये आए थे वह भी चल दिए। उन लोगोंके जानेपर काकाकी आँखोंसे दो-एक बूँद आँसूके टपक पड़े। इसके पहले उन्होंने अभी तक एक बूँद आँसूका नहीं गिराया था।

जो कागज़ पुलिसवाले ले गए थे, उसमें राजूने क्या-क्या बातें लिखी थीं—कोई बात मेरे संबंधमें भी थी या नहीं, यह जाननेके लिये मैं विशेष उत्सुक थी। पर किसी तरह यह बात मालूम नहीं हुई। गया! गया! सारे कुटुंबसे सदाके लिये अपना संबंध तोड़कर वह अब गया!—रह-रहकर मेरे मनमें केवल यही भावना गड़ती जाती थी। मैंने सोचा—"मेरे दुश्चरित्रपर दुःखित, संतप्त और उत्तेजित होनेवाला कोई व्यक्ति अब घरमें नहीं रहा। मैं अब जी-भर डाक्टर साहब या अन्य किसी सुरूप पुरुषके साथ आनंदकी बातें कर सकती हूँ—मेरे सुखकी स्वतंत्रतामें बाधा पहुँचानेवाला जो तीखा कंटक था वह अब निकल गया—अब मैं निर्द्वंद्व होकर विचर सकती हूँ।" पर उस कंटकके निकलनेपर ऐसी तीक्ष्ण वेदना होगी, यह बात पहले कौन जानता था? यह बात मुझे आज मालूम हुई कि कंटककी यह वेदना नारीके हृदयको इतनी प्यारी होती है। हाय, यदि समस्त जीवन यही वेदना मेरे मनमें गड़ी रहती!

अर्थी तैयार थी। माधवी दीदीके प्यारे भाईकी लाश उसके पतिकी मृत्युके छठे दिन श्मशानको ले जानी पड़ेगी, यह किसने सोचा था! पर—। भगवान्! मुझे क्या क्षमा मिलेगी?

२९

तमाम शहरमें खबर फैल गई थी। लोग समवेदना प्रकट करनेके लिये एक-एक करके काकाके पास आने लगे। काका हाँ या नहींके अतिरिक्त किसीके प्रश्नका कोई उत्तर नहीं देते थे। वह न मालूम क्या सोच रहे थे, उनका ध्यान न मालूम कहाँको लगा हुआ था! पर यह निश्चित था कि उनके मुखपर शांत और निर्विकार भाव विराज रहा था।

अचानक मैंने आश्चर्यचकित होकर देखा कि डाक्टर कन्हैयालाल प्रोफ़ेसर किशोरीमोहनको साथ लेकर 'ह्विप' को हाथसे इधर-उधर घुमाते हुए तेज़ीके साथ चले आ रहे हैं। आरंभमें जब डाक्टर साहबसे मेरा परिचय हुआ था तब इसी अवस्थामें, प्रोफ़ेसर साहबके साथ मैंने उन्हें देखा था। तबसे आज प्रोफ़ेसर साहबने हमारे यहाँ पधारनेकी कृपा की थी।

मैं दूरहीसे डाक्टर साहबको एकटक देख रही थी। मैं सोचती थी—"यह वही डाक्टर साहब हैं जिनकी-बदौलत हमारे घरका सर्वनाश हो चुका है। यह वही महाशय हैं जो नित्य नई-नई युवतियोंकी खोजमें रहते हैं, और यह वही हजरत हैं जिन्हें मैंने घृणाकी सनकमें एकबार दुतकार दिया था। पर आज ऐसे घोर अनर्थके बाद भी क्यों रह-रहकर मेरी आँखें उन्हींकी ओर लगी हैं? क्यों उनके रूपका मोह मैं नहीं त्याग सकती? क्यों ऐसे हत्याकांडके बाद भी मेरा जी रह-रहकर उनसे बातें करनेके लिये आकुल हो रहा है? भगवान्! इस दुराचारिणी नारीकी अंतिम गति क्या होनेवाली है!"

मैंने दोनों हाथोंसे अपनी आँखें ढक लीं और डाक्टर साहबको न देखनेका संकल्प किया। डाक्टर साहब भीतर काकाके पास चले गए। मैं अपने कमरेमें आकर बैठ गई। पर रह-रहकर मन उनसे मिलनेके लिये चंचल हो उठता था। बहुत देर तक मैं द्विविधामें बैठी रही। कितनी ही बार उनके पास जानेके लिये उठी, पर फिर-फिर बैठ गई।

बहुत देर हो गई थी। एक अस्पष्ट विश्वास मेरे मनमें वर्त्तमान था कि डाक्टर साहब अवश्य ही जानेके पहले एक बार मेरे पास आकर मिलेंगे। पर मिलकर क्या करेंगे और मैं क्या बातें करूँगी, इस संबंधमें मैंने कुछ नहीं सोचा। कुछ भी हो, आखिर मिनट तक मैं उनके आनेकी आशा अथवा आशंका करती रही। पर वह नहीं आए।

संध्या हुई। अँधेरा होने लगा। मृत्युलोकका हाहाकार अपना दल-बल लेकर मेरे कमरेमें डेरा बाँधने लगा। कहींसे कोई आश्वासन, किसी प्रकारकी सांत्वना मुझे नहीं मिल रही थी। आँसू गिराना वृथा था, हाय-हत्या मचाना विफल था। सब शोक-संतप्त थे। किसीको देखकर धैर्य धारण करनेकी आशा ही नहीं की जा सकती थी। सबके ऊपर अचानक सारा आसमान ही टूट पड़ा था। सारे घरका चमकता हुआ सूर्य उठकर शून्यमें विलीन हो गया था। वह विशाल भवन जो जीवन-के उल्लास और राजनीतिक क्रियाओंकी उत्तेजनाके कारण प्रतिक्षण आंदोलित और जागरित रहा करता था, आज मृत्युके अंधकारतम गह्वरसे भी अधिक शून्य जान पड़ता था। पर इस बातकी नालिश किससे की जा सकती थी!

उस दिन किसीने खाना नहीं खाया। आँखें बंद करके मैं किसी तरह लेटे रही।

इस घोर विपत्तिमें भी मेरे अंतस्तलके एक अंतरतम कोनेमें यह अस्पष्ट आशा वर्त्तमान थी कि कालकी गतिसे धीरे धीरे एक दिन दुःखका यह घोर अंधकार विलीन हो जायगा और जीवनकी नौका फिर पहलेकी तरह आनंदकी तरंगोंमें बहने लगेगी। धिक्कार है !

३०

दूसरे दिन सुबहको जब आँखें खुलीं, उस समय शायद नौ बज चुके होंगे। आलस्यके कारण मैं पलँगपर लेटे-लेटे जम्हाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेने लगी। अभी उठना चाहिए या नहीं, कुछ देरतक इसी द्विविधामें रही। जो कुछ होना था वह हो चुका, अब वृथा शोक करनेसे क्या होगा, यह सोचकर मनमें कुछ ज्ञानका भी आविर्भाव हो रहा था। इसी तामसिक अवस्थामें रहकर कुछ देरके बाद उठ बैठी।

स्नानादिसे निवृत्त होकर बाहर बरामदेमें आई। देखा कि काकाके कमरेकी तरफ़ नौकर-चाकर व्यस्त होकर दौड़े जा रहे हैं। कुछ घबराहट-सी हुई। एक नौकर उनके कमरेसे लौटकर तेज़ीसे दौड़ा आता था। मैंने ज़ोरसे उसे पुकारकर पूछा—" छन्नू, क्या हुआ ? "

उसने कहा—" अंधेर हो गया, बीबी, काका अपने पलँगपर बेहोश पड़े हैं। डाक्टर आए हुए हैं। "

यह कहकर वह अपने कामको चल दिया। " भगवान, यह दूसरा वज्रपात क्या सहन हो सकेगा ! " यह सोचती हुई, लड़खड़ाते हुए पाँवोंसे मैं काकाके कमरेकी तरफ़ चली। किसीने अब तक मुझे ख़बर नहीं दी थी।

जाकर देखा लोग काकाके पलँगको घेर कर खड़े हैं। काकाकी आँखें बंद थीं। वह चित होकर लेटे थे। साँस बहुत रुक-रुककर चल रहा

था। गोरा-उजला मुँह बिल्कुल पीला पड़ गया था और कपालकी नसें ऊपरको उछलकर साफ़ दिखलाई दे रही थीं। कपालकी दोनों तरफ़की हड्डियोंके बीचमें गढ़े पड़ने लगे थे। सिविल सर्जन आया हुआ था। वह उनके बाएँ हाथकी टहनीके ऊपर मांसमेंसे एक पिचकारी द्वारा रक्त निकालनेकी चेष्टा कर रहा था और जितना रक्त निकलता जाता था उसे एक झाड़नसे पोंछता जाता था।

मैंने आँखोंमें आँसू भरकर उससे अँगरेज़ीमें पूछा—"साहब, काकाको क्या हो गया?"

वह पिचकारीसे रक्त निकालता हुआ एक बार मेरी ओर ताककर बड़े शांत और मधुर स्वरमें बोला—"'सेरीब्रल हेमरेज' हो गया है। दिमाग़में ज्यादा खून जमा हो जानेकी वजहसे दिमाग़की कोई नस टूट गई है। यह सब 'एपोप्लेक्सी' के चिह्न हैं।"

"इसका कारण क्या हो सकता है?"

"कई कारणोंसे ऐसा हो जाता है, पर साधारणतः किसी कठिन दुःखकी चिंताके कारण अधिक उत्तेजित हो जानेसे ही ऐसा हुआ करता है।"

"हाथसे आप रक्त क्यों निकालते हैं?"

"इस स्थानका संबंध सीधा मस्तिष्कसे ही होता है। यहाँसे खून निकालनेपर संभवतः दिमाग़ कुछ हल्का हो जाय। पर अब आशा बहुत कम है। हालत बहुत ज्यादा ख़राब है। I am afraid, it is too late now. I am very sorry, Miss! मैं सिर्फ़ अपना कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ, बस। ईश्वर ही कुछ कर सकता है तो दूसरी बात है, नहीं तो अब इनके जीवनकी आशा छोड़ देनी चाहिए।"

ओफ़! उसकी यह अंतिम बात कैसी तीक्ष्णतासे मेरे कलेजेमें चुभी! मैं अब तक यह समझे थी कि यह मामूली बेहोशी है और थोड़ी देरमें अच्छी हो जायगी। अम्माँको भी शायद अब तक यही आशा थी। डाक्टरकी यह बात सुनकर उन्होंने सिर पीटना शुरू कर दिया।

पर इस एक क्षणके भीतर मेरे हृदयमें एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। मेरे अत्यंत दुर्बल नारी-हृदयमें एक पौरुष-मय दृढ़ता धीरे-धीरे अपना अधिकार जमाने लगी। ऐसी घोर संकटमय और निस्सहाय स्थितिमें इस प्रकारकी कठिन दृढ़ताका होना असंभव-सा था, इस कारण मुझे अपने हृदयके इस आकस्मिक परिवर्तनपर अत्यंत आश्चर्य हो रहा था। एक अज्ञात वाणी मेरे हृदयके कानोंमें कह रही थी—"राजू गया, काका जानेको तैयार हैं। महाकालका भयंकर कोप तुम्हारी दुर्बलताका अनुचित लाभ उठाकर तुम्हारे पापका निष्ठुर बदला लेना चाहता है। तुम्हें पूरी तरहसे नष्ट-भ्रष्ट करके ही वह शांत होगा। निष्ठुर दैवसे तुम्हें किसी प्रकारका सहारा नहीं मिल सकता। जब तक तुममें स्वयं अपने पैरोंपर खड़े होनेकी शक्ति उत्पन्न नहीं होगी तब तक नियतिके चक्रमें तुम बेभाव पिसती जाओगी। यदि तुम अनंत शून्यके बीचमें अपना अस्तित्व क़ायम रखना चाहती हो तो इसी अवसरपर, इसी क्षण, जागरित हो जाओ और अपनी आत्माके भीतरसे विपुल शक्ति संग्रह करके कठिनसे-कठिन विपत्तिके लिये तैयार हो जाओ। यदि ऐसा न करोगी तो तुम्हें छिन्न-भिन्न होकर गहन शून्यमें बिखर जाना पड़ेगा और तुम्हारी आत्मा खंड-खंड होकर प्रलयांधकारमें विलीन हो जायगी।"

इस दैव-वाणीसे मेरे भीतर तत्काल एक अलौकिक और अवर्णनीय प्रेरणा उत्पन्न हो गई और अमृतका संचार होने लगा। मैंने एक लंबी

साँस लेकर मन-ही-मन कहा—"काका, राजूकी तरह इस पापिनीके ऊपर कुपित होकर तुम भी बिना सूचना दिए जाते हो? जाओ! जाओ! मैं इस समय निस्सहाय हूँ, मेरा कोई सहारा नहीं है, इसलिये इस समय तुम मुझे धोखा देनेमें समर्थ हुए हो। पर मेरी मृत्युके बाद मेरी संतप्त और उत्सुक आत्माको कैसे धोखा दे सकोगे? कहीं जाओ, जन्मसे जन्मांतर तक तुम दोनोंकी खोज किए बिना मैं कभी विश्राम नहीं लूँगी, इस बातका मुझे पूरा विश्वास हो गया है। इसी एक सांत्वनाको लेकर मैं जीवन धारण करूँगी। जाओ, जाओ! इस पतिताका कलंकित मुख अब अधिक न देखना ही तुम्हारे लिये उचित था।"

मैंने मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया।

दिन भर अवस्था प्रायः एकसी रही। साँस उसी तरह रुक-रुककर चलता रहा। बीच-बीचमें बेहोशीकी हालतहीमें उलटियाँ भी होती जाती थीं। मेरे मनमें आखिर मिनट तक यह आशा बनी थी कि शायद किसी कारणसे फिर उनके प्राण लौट चलें। पर यह केवल दुराशा थी। जीवनका तेल धीरे-धीरे घटता जाता था। दिया मुरझाता जाता था। अंतको रातके समय, आठ बजेके क़रीब, दीप सदाके लिये निर्वापित हो गया!

३१

काकाकी मृत्युपर देश-भरसे शोक-प्रकाशक तार और पत्र अम्माँके पास आए थे और समाचारपत्रोंमें भी कुछ दिनों तक इस संबंधमें बड़ी सनसनी-सी फैली रही। ऐसा माळूम होता था जैसे सचमुच उनकी मृत्युसे देशकी जो भयंकर हानि हुई है उसकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकेगी। पर मुझे इस शिष्टाचार-जनित दिखावटी

शोकका अनुभव अन्यान्य प्रसिद्ध नेताओंकी मृत्युसे पहले ही हो चुका था, इसलिये मैं इस संबंधमें यथेष्ट उदासीन थी। आज काकाकी मृत्युको कुछ ही महीने हुए हैं पर कहीं उनका नाम न तो सुनाई देता है न कहीं पढ़नेमें ही आता है। देशोद्धारकी कीर्ति इतनी क्षणिक है! राजनीतिक क्षेत्रका कोलाहल इतना पोपला है! यदि काकाके राजनीतिक व्याख्यानों और संदेशोंकी अपेक्षा लोग उनके उन्नत स्वभावसे परिचित होते तो संभवतः उनकी कीर्ति अधिक स्थायी रहती।

पर मुझे इस बातका दुःख नहीं था कि उनकी कीर्ति स्थायी नहीं रही। उनकी आकस्मिक मृत्युसे जो गहरा धक्का मुझे पहुँचा था उसने मेरी मृत और गलित आत्माको पुनर्जीवित कर दिया, यह बात मेरे लिये अधिक महत्त्वपूर्ण थी।

काकाने राजूके शोकमें प्राण त्यागे थे, इस बातमें कुछ भी संदेह नहीं रह गया था। पर क्या राजूकी मृत्युसे मेरे हृदयमें चोट नहीं पहुँची थी? क्या काकाका दुःख मेरे दुःखसे बड़ा था? संभव है। पर मैं यह बात अच्छी तरहसे जानती हूँ कि राजूकी भयंकर मृत्युके कारण जो घाव मेरे हृदयमें बना है वह कभी अच्छा नहीं हो सकता—उस स्थानपर सदाके लिये नासूर हो गया है, यह बात कैसे लोगोंको समझाई जाय! काकाका घाव तो उनकी मृत्यु हो जानेसे तत्काल ही अच्छा हो गया—उन्हें अधिक कष्ट ही नहीं भोगना पड़ा। साधारणतः लोगोंका यह विश्वास रहता है कि जिस दुःखसे आदमी प्राण त्याग देता है वही दुःख ही सबसे बड़ा होता है। पर यह भयंकर भूल है। किसी दुःखसे मृत्यु इस लिये होती है कि उसके कारण स्नायविक चक्रमें तत्काल एक ज़बर्दस्त उत्तेजना पैदा हो जाती है। यदि किसी कारणसे उत्तेजित व्यक्ति उस समय अपनेको सँभाल सके तो फिर वह दुःख उसे अधिक नहीं सताता और

धीरे-धीरे विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जाता है । पर एक प्रकारका दुःख ऐसा होता है जो तत्काल तो विशेष कष्ट-दायक माल्रम नहीं होता, पर घावके पकनेपर धीरे-धीरे हड्डी-हड्डी और रोम-रोममें व्याप्त हो जाता है। ऐसे दुःखसे मृत्यु तो नहीं होती, पर आजीवन उसकी जलनसे आत्मा झुलसती रहती है । पुत्रकी मृत्युके शोकसे पिताकी मृत्यु हो जानेकी घटनाएँ बहुत देखनेमें आती हैं, पर यह बहुत ही कम सुना जाता है कि किसी माताने इस दुःखसे प्राण त्याग दिए । इससे यह नहीं समझा जा सकता कि पिताका दुःख माताके दुःखसे बढ़कर होता है । माताको दुःखकी जो अग्नि धीरे-धीरे जीवन-भर जलाती रहती है वह मृत्युसे कई गुना भयंकर होती है । राजूकी मृत्युसे काका अपने प्राण त्यागकर दुःखसे मुक्त हो गए । पर मेरी नस-नसमें उस दुःखकी जो जलन व्याप्त हो गई थी उसके आगे मृत्युका क्षणिक दुःख कितना तुच्छ था !

पहले मेरा ऐसा विश्वास था कि मैं काकाको जितना प्यार करती हूँ उतना किसीको नहीं । पर अपने अनजानमें मेरा रोम-रोम केवल राजूको ही प्यार करनेके लिये उन्मुख रहता था, यह मुझे नहीं माल्रम था । अपने भाईके लिये मेरा प्रेम इतना दृढ़, अंतर्व्यापी और स्थायी था, यह बात मुझे उसकी मृत्युके बाद माल्रम हुई । अन्य सब व्यक्तियोंके प्रति मेरा चंचल प्रेम धीरे-धीरे विलीन होने लगा था, पर राजूके लिये मेरा हृदय अधिक-अधिक हाय-हाय करता जाता था । रह-रहकर मुझे यह भावना संतप्त कर रही थी कि मेरे कारण मेरे प्यारे भाईके हृदयमें जीवन-भर काँटा गड़ा रहा और अंतको उसका उन्नत और अमूल्य प्राण सबकी माया त्यागकर संसारसे उठ गया ।

३२

एक दिन मैं राजूके कमरेमें एक विशेष ग्रंथको ढूँढ़ रही थी। अचानक एक डायरी मेरे हाथ लगी। खोलकर पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते मेरा चित्त उसमें इस तरहसे लग गया कि खड़े-खड़े मैंने उसे पूरा पढ़ डाला। मैं उसमें ऐसी लवलीन हो गई थी कि अपने तन-बदनकी सुध भी मुझे नहीं थी। राजूके हृदयसे मैं बहुत-कुछ परिचित थी, पर इस डायरीसे उसके संबंधमें जो प्रकाश मुझे प्राप्त हुआ वह अतुलनीय था। डायरीका कुछ अंश आज जन-साधारणके सम्मुख पेश करती हूँ—

"मेरी दिन-चर्याका क्रम कैसा अद्भुत है! जीवनका महत् उद्देश्य मेरे सामने होते हुए भी किसी निश्चित कार्यक्रमके नियमोंका पालन मुझसे नहीं होता। जीवनकी अनंत गति देखकर मेरी बुद्धि चकरा गई है। मुझे चारों तरफ़ केवल अंधकार ही अंधकार दिखलाई देता है। कहींसे कोई सहारा मुझे नहीं दिखलाई देता, कहींसे कोई उत्साह मुझे नहीं मिलता। निराशा, निरुत्साह और निरुद्यम! मैं यह सोचकर हैरान हूँ और दुविधामें पड़ा हूँ कि मुझे जीना चाहिए या मरना। मैं जानता हूँ कि इस विकट समस्याने अनेक युगोंमें अनेक पुरुषोंको पागल बनाया है और इसका समाधान कोई नहीं कर सका। पर यह जानकर भी मैं बेबस इसी एक भावनासे आच्छन्न हुआ जाता हूँ।

"मैं चाहता हूँ कि जीवनके आनंद-विलासमें सम्मिलित होकर इस दुःखमय संसारमें जहाँ कहीं जो कुछ भी पार्थिव सुख प्राप्त होता है उसे अन्यान्य सुखान्वेषियोंकी तरह ग्रहण करूँ। पर यह इच्छा मनमें उत्पन्न

होते ही थोड़ी ही देर बाद निबिड़ घृणासे मेरा सर्वांग आलोड़ित हो जाता है, और फिर दुःखके अतल सागरमें डूब जानेको जी करता है।

"दुःखके प्रति क्यों मेरे मनमें ऐसी चाह है? दुःखकी भावनाओंमें क्यों मुझे इतना आनंद प्राप्त होता है? क्यों मैं सदा दुःख, अंधकार और मृत्युका ही चिंतन किया करता हूँ? लोग उपदेश देते हैं कि मनुष्यको सदा आशान्वित होकर कार्य करते रहना चाहिए। वे कहते हैं कि जीवनमें सुख है, आशा है और आनंद है; हमें आनंदका ही अनुकरण करना चाहिए। पर मेरी आँखोंके सामने क्यों प्रतिपल अन्याय, अत्याचार, नीचता और स्वार्थके बीभत्स दृश्य नाचते रहते हैं? क्यों हर घड़ी मेरा खून खौला हुआ रहता है? क्यों मैं अपनी बेबसीके कारण अपने दाँत पीस-पीसकर, जी मसोसकर रह जाता हूँ? क्या मनुष्यका जीवन सचमुच एक आनंदमय स्वप्न है? अथवा किसी पैशाचिक देवताका निष्ठुर अभिशाप है? यदि आनंदकी नींवपर जीवनकी इमारत खड़ी हुई है तो क्यों रात-दिन दुर्बलोंकी हाय-हाय सुनकर मेरे कलेजेमें लाखों छिद्र हो गए हैं? क्यों सबलोंमें स्वार्थपूर्ण भोगके प्रति उत्कट लालसा देखकर घृणा और प्रतिहिंसाके भावसे मेरा दम घुटने लगता है? क्यों रोग-शोक और दुःख-दारिद्र्यकी कालिमासे पृथ्वीमाताका समस्त शरीर जर्जरित और उत्तप्त हो रहा है? क्यों अंतमें दुर्बलोंकी तरह सबलोंकी भी गति समान होकर दोनोंको किसी भयंकर पाषाणसे टकराकर किसी अंधकारमय विकराल छायाका ग्रास बनना पड़ता है? इन सब बातोंको देखते हुए भी कैसे मेरे मनमें आनंदकी उमंगें हिलोरें ले सकती हैं?

* * *

"मैं अकेला हूँ। मुझे जीवनका एक भी साथी कहीं कोई नहीं मिला। काका, अम्माँ और अपनी बहनोंके साथ मेरे स्नेह-प्रेमका चक्र

चल रहा है, पर क्या सचमुच हम लोग एक-दूसरेको प्यार करते हैं? मैं विश्वास नहीं कर सकता। सबको अपनी-अपनी जान प्यारी है, सब अपने-अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिये जीवन धारण किए हैं। संभव है, कोई मुझे सच्चे दिलसे प्यार करता हो, पर मैं किसीको प्यार नहीं करता। काका, अम्माँ, दीदी, लीला, इनमेंसे अभी कोई इस लोकसे चल बसे तो मुझे कुछ भी दुःख होगा, इस बातकी आशा मुझे नहीं है। कोई मरे या जिए, जब इस संबंधमें मैं उदासीन हूँ तो कैसे किसीको प्यार कर सकता हूँ! हाँ, रक्तका संबंध अवश्य प्राकृतिक नियमोंके अनुसार कुछ-न-कुछ असर दिखलाता है। अपने घरके लोगोंके साथ मैं केवल इतने ही बंधनमें बँधा हूँ।

"मैं इस विजन विश्वमें अकेला हूँ, इस अनुभूतिकी वेदना कैसी तीव्रतासे नित्य मेरे मर्मको विद्ध करती है! इस वृहत् संसारमें एक व्यक्ति भी मेरी यातनाओंका, मेरी भावनाओंका साक्षी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने रात-दिनके सांसारिक चक्रमें व्यस्त है, और मैं अकेला रात्रिके गहन अंधकारमें तारोंको गिनता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि लोग मेरी इस डायरीको पढ़कर कहेंगे कि यह एक अनुभवहीन अव्यावहारिक, आलसी व्यक्तिकी पोपली भावुकता है और कोरी कविता है। हाय मेरे भगवान, कैसे मैं लोगोंको विश्वास दिलाऊँ कि मेरा रोम-रोम केवल इसी अंधकारमय सत्यके लिये लालायित है!

*   *   *   *

२

"पापी पेटके भारसे जो लोग मुक्त हो गए हैं, जिन्हें दैवी कृपासे खाने-पीनेकी चिंता नहीं है, उनमेंसे कोई राजनीतिके पीछे पागल है,

कोई संसारकी भलाईमें लगा है, कोई देशोद्धारमें रत है, कोई व्याख्यानों और रचनाओंद्वारा परोपदेशमें व्यस्त है। पेटकी चिंतासे मैं भी मुक्त हूँ, पर संसार अथवा देशका हित मैं किसी रूपमें भी करनेके योग्य नहीं हूँ। अपनी वैयक्तिक आत्माके अनंत रहस्यके उलझनसे ही मुझे छुटकारा नहीं मिलता। एक बिंदु आत्माके भीतर वासनाओंकी कैसी-कैसी भयंकर लहरें प्रबल वेगसे प्रवाहित होती हुई क्षुब्ध गर्जनसे उद्दाम क्रीड़ा करती जाती हैं! प्रकृतिकी यह कैसी आश्चर्यमयी लीला है! घृणा, प्रेम, आनंद, विषाद, प्रतिहिंसा, करुणा, धैर्य और उत्तेजनाका ताड़न प्रतिक्षण कैसी विचित्रताके साथ मनुष्यके भीतर चला करता है! इन सब विकारोंसे मुक्त होनेके लिये मैं रात-दिन छटपटाता रहता हूँ, पर न माळूम किस रहस्यमय लोकसे, किस अंधकारमय युगसे, कौन अचिंतनीय शक्ति मुझे मेरी इच्छाके विरुद्ध धर दबाती है!—मेरी आत्माकी सब स्वतंत्रता पलभरमें नष्ट हो जाती है, और मैं अपनी आंतरिक, अव्यक्त वासनाओं और विकारोंका क्रीतदास बन जाता हूँ। हाय, क्या अनंत-काल तक मनुष्यकी वैयक्तिक आत्मा और प्राकृतिक शक्तिका संग्राम इसी तरह चलता रहेगा? क्या तात्त्विकोंका ज्ञान सब ढकोसला है? अथवा——

* * * *

"मुझे देखकर बहुत-से लोग संभवतः यह समझते हैं कि यह नवीन युवक कैसा भाग्यशाली है! कैसा जगमगाता हुआ रूप है, कैसा गठीला शरीर है, कैसा अच्छा स्वास्थ्य है, और तिसपर धनी पिताका इकलौता पुत्र है और रंगमहलमें रहता है! संभवतः वे लोग विचारते हैं कि एक परमा सुंदरी कन्याके साथ मेरा विवाह होकर उसके साथ रंग-रहस्यमें मैं समस्त जीवन आनंदपूर्वक बिता दूँगा। ठीक है। जीवनके सुख

और आनंदके आदर्शके संबंधमें लोगोंकी अपनी-अपनी धारणा ही तो है ! जीवनको कुछ लोग एक निष्कंटक राजमार्ग समझते हैं जो मोटर तथा पाथेय मिलते ही आनंदपूर्वक विना किसी कष्टके तय किया जा सकता है। उन लोगोंकी धारणामें कठिनाई जो कुछ है वह राजमार्गकी दूरी और पाथेयका अभाव है। यदि केवल यही भेद होता तो कोई बात नहीं थी। पर 'क्षुरस्य धारा'—वाली बात भुलाने योग्य नहीं है। वह विकट सत्य है।

* * * *

"पर क्या सचमुच मेरे इस भावुक कैशोर हृदयमें स्त्रीके लिये कोई स्थान नहीं है ? प्रेमकी विकट वासना क्या मेरे मर्मको कभी नहीं छेदती ? क्या मेरा हृदय पत्थरकी तरह कठोर और रूखे नैयायिककी तरह तात्त्विक है ? जो लोग मेरे निकट रहकर नित्य मेरी दिन-चर्या देखते हैं उनमेंसे बहुतोंका यह भी ख्याल है कि मैं विशुद्ध तात्त्विक हूँ और सांसारिक बातोंके प्रति एकदम उदासीन हूँ। मानवात्माको ये लोग गंगाकी नहर समझते हैं जो एक सुनिर्दिष्ट, सुनिश्चित मार्गसे होकर बहती है। आत्माके सागरकी उत्ताल-तरंग-मालाओंके विकराल प्रवाहसे ये लोग परिचित नहीं हैं। उन्हें खबर नहीं है कि इस सागरकी अनंत-गति-संपन्न प्रलयंकर मूर्त्तिको किसी सुनिश्चित गतिके बंधनमें नहीं बाँधा जा सकता।

* * *

"प्रेमको लेकर ही मैंने जन्म धारण किया था और प्रेमको लेकर ही जीवन बितानेका मेरा संकल्प था। पर इस सर्वशोषी तृष्णाके निवारणका कोई उपाय मैं इस जन्ममें नहीं देखता। कौन मेरे उत्कट वासनामय हृदयके सर्वध्वंसी प्रेमको स्वीकार करेगा ? कौन मेरे इस उत्तप्त

प्रेमकी आच सहन कर सकेगा ? अपने इस क्षुद्र जीवनके अल्प समयमें संसारका जो कुछ अनुभव मुझे हुआ है उससे मैंने यही निश्चय कर लिया है कि अपने उत्कट प्रेमकी प्रलयाग्निको किसीके आगे व्यक्त न कर उसे अपनी ही राखसे ढकना होगा। यही कारण है कि मैं किसी भी सुंदरी किशोरीके साथ अधिक हेलमेल बढ़ाकर उसके आगे अपना हृदय व्यक्त करनेकी तनिक भी इच्छा नहीं रखता। दीदीकी कितनी ही सहेलियाँ नित्य हमारे यहाँ आती, जाती रहती हैं। दीदीने उन सबसे मेरा परिचय करां दिया है। पर मुलाकात होनेपर दो-एक बातें करके मैं उदासीनताके साथ उनसे मुँह फेर लिया करता हूँ। संसारका समस्त स्त्री-समाज मुझे एक monotonous affair—एक वैचित्र्यहीन धंधा—जान पड़ता है। कौन बतला सकता है कि मेरे मनको समझनेवाली स्त्री मुझे कहाँ मिलेगी!

* * *

"मेरे रूपका आकर्षण स्त्रियोंके लिये कितना प्रबल, कितना सम्मोहक है, इसका अनुभव मुझे अच्छी तरह हो चुका है। पर मुझे इस बातका बिलकुल गर्व नहीं है। अपने उद्दाम रूपकी प्रचंड ज्वालासे मैं स्वयं झुलसा जाता हूँ। प्रेमकी प्यासी कितनी ही करुण आँखोंकी मुग्ध दृष्टिने इस ज्वालामें फाँदकर, भस्म होकर जल मरनेकी इच्छा प्रकट की है। पर मैं जल मरनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको नहीं चाहता। मैं ऐसी स्त्रीको चाहता हूँ जो मेरे रूप और प्रेमकी अग्निको अपने हृदयकी ज्वालामें विलीन करके शांत और संयत रूपसे जीवनका जटिल चक्र निभा सके। पर जिस समाजमें मैं रहता हूँ उसमें ऐसी स्त्रीका मिलना असंभव है। पीड़न, निर्यातन और आत्मत्यागके अनुभवके विना स्त्रीमें इस गुणका विकास नहीं हो सकता। केवल माधवी दीदीमें मैंने यह

अपूर्व गुण पाया है। दारिद्य और दुःखके घोर अंधकारके भीतर वह जगमगाता हुआ अमूल्य रत्न मैंने पाया है—जिन खोजा तिन पाइयाँ। इस प्रकारकी प्रकृतिकी स्त्रीके दर्शनकी उत्कट लालसा मेरे हृदयमें वर्त्तमान थी। भगवानने मेरी मनोकामना सफल कर दी है। मेरी भक्तिरसविह्वल उच्चाकांक्षाकी सिद्धि हो चुकी है। माधवी दीदीके उन्नत और पवित्र चरणोंके तले अपने गर्वित हृदयकी अकपट श्रद्धांजलि प्रदान करनेमें समर्थ होनेके कारण मैं अपनेको कृतार्थ और अपने जीवनको धन्य समझ रहा हूँ। मेरे जीवनकी संगिनी मुझे इस जन्ममें किसी प्रकार नहीं मिल सकती इसलिये इस बातके लिये रोना अब वृथा है।

*   *   *   *

३

"डाक्टर कन्हैयालालको मैंने जिस दिन पहली बार देखा तो उन्हें देखते ही एक अनोखी अप्रिय अनुभूतिसे मैं सिहर उठा। मुझे ऐसा माद्धम हुआ जैसे जो एक विशेष वेदना कितने ही जन्म पहले मेरे हृदयके तल-प्रदेशमें बलपूर्वक गाड़ दी गई थी, वह फिर आज नए सिरेसे जाग पड़ी—जैसे मेरे जन्मजन्मांतरका बैरी आज बहुत दिनोंके बाद मेरे प्राणोंकी घातमें आ पहुँचा है। क्यों मुझे ऐसा प्रतीत हुआ? उनसे परिचय होनेके पहले ही क्यों मेरे दिलमें यह बात जम गई? क्या पूर्वजन्मका संस्कार इसीको कहते हैं! संभव है। पर कुछ भी हो, डाक्टर साहबके प्रति घृणा और क्रोधका भाव मेरे भीतर दिन-दिन बढ़ने लगा है और साथ ही एक अनोखे भयका संचार भी होने लगा है।

*   *   *   *

" जिस व्यक्तिको मैं जी-जानसे घृणा करता हूँ उसे दीदी क्यों इतना चाहती हैं ? भगवान ! क्या भाई और बहनकी प्रकृतिमें इतना भेद हो सकता है ? जिस दीदीके साथ बचपनमें खेल-कूद करके मैंने आनंद-के दिन बिताए हैं, जिसके साथ मैं दो-चार साल पहले तक बेधड़क होकर, विना किसी संकोचके, हिलमिलकर रहा करता था, स्नेहपूर्वक कलह किया करता था, जिसके हृदयको मैं अपने हृदयसे बिलकुल भिन्न नहीं समझता था, उसकी प्रकृतिसे मेरा भेद कुछ वर्षोंसे धीरे-धीरे बढ़ता चला गया है और अब यह भेद चरम सीमाको पहुँचना चाहता है ।

* * * *

" डाक्टरके किस गुणपर दीदी मुग्ध हुई हैं ? उसमें ऐसी कौनसी विशेषता है ? सौंदर्य ? वाक्-चातुर्य ? संभव है । पर क्या एक उन्नत पुरुषका आदर्श इन्हीं दो गुणोंमें समाप्त हो जाता है ? इस शख्समें पुरुषत्वकी दृढ़ता, गांभीर्य और भावावेश कहाँ पाया जाता है ? उसमें पाई जाती है केवल चापलूसी, तुच्छ व पोपले ज्ञानका दंभ, स्वार्थ-सिद्धिकी बुद्धि और उच्चाकांक्षाका पाखंड । उसके स्वभावकी नम्रतामें निर्लज्जता भरी है, उसके सुमधुर शिष्टाचारमें नीचता पाई जाती है, उसकी चतुराईकी बातोंमें घृणित दर्पकी दुर्गंध आती है । इस निर्लज्ज ढोंगसे भरे आदमीको मैं अपनी समस्त अंतरात्मासे घृणा करता हूँ । मैं कितना ही अपने मनको समझाता हूँ कि उसके प्रति बिलकुल उदासीन रहूँ, पर असह्य घृणा रह-रहकर उमड़ पड़ती है और मेरे सारे हृदयको तिक्त और विषमय कर देती है । हे भगवान ! ऐसे आदमीके साथ दीदीको अपने एकांत कमरेमें हँसी-खुशीकी बातें करते देखकर मेरा हृदय जलकर भस्म हुए विना कैसे रह सकता है ? हाय, मेरा कलेजा रात-दिन असह्य आँचमें भुनता रहता है, और मेरी दीदी जो मुझे

बचपनमें इतना प्यार करती थी, यह बात देखते हुए भी नहीं देखना चाहती। उसे आज मेरी परवा बिलकुल भी नहीं है। इसी लिये मैं कहता हूँ मनुष्यका प्रेम स्वार्थजनित है, भाई-बहनका प्रेम क्षणिक है, माता-पुत्रका प्रेम झूठा है और पति-पत्नीका प्रेम ढोंग है।

* * * *

" इस डाक्टरका साहस कितना भयंकर है! वक्त-बेवक्त वह बेधड़क दीदीके कमरेमें चला जाता है। दीदीके मनमें अथवा व्यवहारमें भी किसी प्रकारका संकोच नहीं जान पड़ता और काका व अम्माँ इस संबंधमें बिल्कुल उदासीन हैं। उदासीन? नहीं। अम्माँ तो चाहती है कि डाक्टरके साथ दीदीका हेलमेल बढ़े। भगवान! औरतोंको तुमने कैसी मनोवृत्ति दी है! डाक्टरके प्रति विद्वेष और द्रोहके कारण कभी-कभी मैं यहाँ तक सोचने लगता हूँ कि स्त्री-जातिमें पर्देके प्रचलनपर जिस व्यक्तिने पहले-पहल मानव-जातिके सम्मुख प्रस्ताव पेश किया होगा वह बड़ा भावुक, दूरदर्शी, और सहृदय रहा होगा। मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ कि पर्देकी प्रथा अत्यंत हास्यास्पद और नाशकारी है, पर बीच-बीचमें, इच्छा न होनेपर भी, इस प्रकारकी कुभावना मेरे मनमें उत्पन्न हो जाती है। मैं विवश हूँ, मैं लाचार हूँ, मेरी मति दिन-दिन भ्रष्ट होती चली जाती है।

* * * *

" दीदीके प्रति मेरे मनमें क्या भाव रहता है, ? क्रोध, घृणा अथवा प्रतिहिंसा? निश्चयपूर्वक कुछ नहीं बतला सकता। शायद इन तीनोंका सम्मिश्रण वर्तमान है। पर बीच-बीचमें, जब मैं दीदीको अकेले अपने कमरेमें उदास और एकांत-चिंतामें मग्नतापा हूँ, तब हृदयमें न मालूम

कौनसी पुरानी वेदना जाग पड़ती है और बेबस मेरी आत्मा करुणा और स्नेहसे गद्गद हो जाती है। किंतु डाक्टरको उसके कमरेमें देखते ही फिर वही घृणा और प्रतिहिंसा उमड़ी पड़ती है। मेरा सारा शरीर काँपने लगता है और मैं अपने कमरेमें जाकर छाती पीटकर लेट जाता हूँ।

*　　*　　*

" माधवी दीदीके यहाँ दीदीको इस ख्यालसे ले गया था कि उसे कुछ चैतन्य होगा—माधवी दीदीकी अंतरात्माका तेज उसपर कुछ असर करेगा। पर अब समझ गया हूँ कि ऐसा होना असंभव है।

*　　*　　*

४

" माधवी दीदीके पति आते ही सख्त बीमार पड़ गये हैं। मेरी इस जगज्जननी दीदीके मनमें कैसी बेकली समाई हुई है! संसारकी यह माता अभी तक अपने आंतरिक वैभव, अपनी आंतरिक शक्तिसे परिचित नहीं है। देवि! जगत्को छलनेके लिये ही क्या तुमने अपना यह करुणामय मायावेश धारण किया है? क्या तुम अपना विकराल कालिका-रूप जान-बूझकर संसारकी आँखोंसे छिपाए बैठी हो? संतानके पालनमें रत रहकर तुम संतानके विध्वंसका सुनिश्चित कर्त्तव्य कब तक भूली रहोगी? अपना दृढ़ और कठोर रूप तुम क्यों इस कठिन स्थितिमें व्यक्त नहीं करतीं! क्यों अपनी अत्यंत सुकुमार और कोमल करुणासे मेरा हृदय पिघलानेमें लगी हो?

*　　*　　*

" दीदीकी निर्लज्जता इस हद तक पहुँच गई है कि अब रातको भी वह डाक्टरके साथ सिनेमा और थियेटर देखनेमें ग़ायब रहती है।

क्या समझकर, किस साहसके बलपर वह ऐसा करती है ? क्या वह मेरे विद्वेषकी आगमें आहुति डालकर अपनी प्रतिहिंसाके कारण सारे कुटुंबको फूँक देना चाहती है ? अच्छी बात है। जब विधाताकी इच्छा ही यही है कि सारा कुटुंब अत्यंत दुर्गतिके साथ विनाशको प्राप्त हो तो उसकी यह इच्छा सफल हो, मैं भी यही प्रार्थना करता हूँ। दीदी, मेरे कलेजेको और भी तेज़ आँचमें भूनकर उसके जितने टुकड़े चाहो कर डालो, सारे घरकी अंतरात्मामें विध्वंस मचा दो, और प्रलयकी ज्वालामें सबको जलाकर हास्य करो। जो जी चाहे मन भरके कर डालो, जिससे तुम्हारे दिलमें कोई अरमान बाक़ी न रहने पावे।

* * *

" माधवी दीदीके पतिको पृथ्वीकी कोई शक्ति नहीं बचा सकी। निखिल-संहारक रुद्रकी जब यही इच्छा थी, तब उसके विरुद्ध कौन अपना बल काममें ला सकता था ? मैंने सोचा था कि इस घटनासे माधवी दीदी वज्राहत होकर बावली-सी बन जायँगी। पर मैं मूर्ख इतने दिनों तक उनकी प्रकृतिकी दृढ़तासे परिचित नहीं हुआ था। कितनी शांत करुण और साथ ही वज्रकठिन दृढ़तासे उन्होंने इस घोर संकटके समय भी अपना गांभीर्य क़ायम रक्खा! पतिकी मृतावस्थाके समय कैसी अलौकिक आभासे उनका मुखमंडल प्रदीप्त हो रहा था! अपने चिर-जीवनकी इस आराध्य देवीको मैंने अत्यंत श्रद्धाके साथ मन-ही-मन प्रणाम किया। मेरे हृदयके भीतर भक्ति और श्रद्धाका इतना रस छिपा हुआ है, यह मैं नहीं जानता था। माधवी दीदीने उद्गमके ठीक स्थान-पर आघात किया था इसलिये उस गुप्त रसने प्रबल वेगसे उमड़कर मुझे पुण्यकी अविरल धारामें प्रवाहित कर दिया था। मुझे इस जीवनमें इतना ही संतोष है कि स्त्री-जीवनकी अनेक चंचलता और दुर्बलताओंके

दलदलसे होकर जीवनके पथमें जाते हुए मुझे अंतको नारीका यथार्थ स्वरूप दिखलाई दिया है ।

* * *

" श्मशानमें जाकर चिता तैयार करके उसके ऊपर लाश रखकर जब हम लोग उसमें आग जला चुके तो थकावटके कारण सब बालूके ऊपर बैठ गए । आसमानमें बादल छाए हुए थे । सर्वत्र एक अवसाद-जनक उदासी व्याप्त थी । चिताग्निकी लपटें धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करती जाती थीं । मैं बहुत देर तक निर्विकार भावसे इन लपटोंकी बहार देखता रहा । धीरे-धीरे लाशका मुँह विकृत हो गया और नीचे पैरोंका मांस, हड्डी और चर्बी जल-जलकर, पिघल-पिघलकर नष्ट-भ्रष्ट हो गए । ज्वालाओंका भीषण रूप साँय-भाँय करके उग्रतर होता चला गया ।

" ज्ञानी लोग यह उपदेश बराबर देते आए हैं कि मनुष्यके नश्वर शरीरका ख्याल न करके उसकी आत्मापर ध्यान दिया करो । पर लाख यह उपदेश सुननेपर भी मनुष्यके सुंदर शरीरके प्रति जो एक मोह-जनित संस्कार अंतरात्मामें बद्धमूल रहता है वह सहजमें जाना नहीं चाहता । इस कारण चिताग्नि जब इस अनुपम देहको विकृत कर देती है तो इस बीभत्स दृश्यसे हृदयमें एक प्रकारकी उत्कट भीति उत्पन्न हो जाती है । मेरा भी यही हाल था । यह दृश्य देखकर भय, चिंता और आध्यात्मिकताकी तरंगें रह-रहकर मेरे चित्तको आंदोलित कर रही थीं । श्मशान-वैराग्य प्रसिद्ध ही है। मैं सोचने लगा—' एक दिन मेरे अपरूप सौंदर्य-मंडित शरीरका भी यही हाल होगा। मर्मर-प्रस्तरकी सजीव मूर्तिके समान मेरा सुंदर, सुडौल, सुगठित और चलता-फिरता हुआ शरीर विकृत, विगलित और गतिहीन होकर जिस अवस्थाको प्राप्त होगा उसका

अनुमान ही नहीं किया जा सकता । नाना रसों और आवेगोंसे प्रतिक्षण प्रकंपित रहनेवाला मेरा हृदय न मालूम किस शून्यमें विलीन हो जायगा और नाना चिंताओंसे आच्छन्न रहनेवाला मेरा चंचल मस्तिष्क बिलकुल निश्चल और अचेत पड़ जायगा । विपुल प्रेम और आनंदके भावसे फूली हुई आत्माका भी अस्तित्व रहेगा या नहीं इसमें भी संशय है । किस अंधकारके विकराल जबड़ोंका ग्रास बनना होगा, यह मालूम नहीं । तब कैसा रहेगा ? इस भीषण, अनिश्चित अंधकारसे मिलित होनेकी उत्कट लालसा यदि किसीमें पाई जायगी तो वह मेरे हृदयमें व्याप्त हिंसा, विद्वेष और घृणाके भावोंमें । मेरे ये भाव मुझे अनंतकाल तक अनंत अंधकारमें विलीन रहनेको बाध्य करेंगे ।'

" सोचते-सोचते मेरा दिल भयके कारण जोरोंसे धड़कने लगा । मैं बैठा नहीं रह सका और उठकर गंगाके किनारे-किनारे टहलने लगा । गंगाका शांत और स्निग्ध प्रवाह कैसी सुमधुर प्रसन्नतासे, अविरल गतिसे आगेको बढ़ता चला जाता था ! कुछ देर तक मैं अन्यमनस्क-सा होकर टहलता रहा । धीरे-धीरे मेरा चित्त कुछ स्थिर हो आया और एक सुनिश्चित संकल्प मेरे मनमें गड़ गया । मैंने सोचा—' किसी तरहसे भी हो, विद्वेष और घृणाके भावको मनसे उखाड़ फेंकना होगा और मृत्युके रोमांचकारी आलिंगनके लिये हर घड़ी तैयार रहना होगा । डाक्टर कन्हैयालालकी सूरतसे मुझे चिढ़ है और दीदीके प्रति मेरे मनमें विद्वेष भरा है—मौतके द्वारमें इन भावोंको लेकर यदि मैं जाऊँगा तो मेरा आत्म-सम्मान जाता रहेगा । प्रेम और आनंदसे जब मैं भरपूर रहूँगा तो मृत्यु मुझे कितना ही दबावे, मेरी गर्वित आत्माको कभी दमन करनेमें समर्थ नहीं होगी ।'

" मैंने अपने मनको यह विश्वास दिलानेकी चेष्टा की कि डाक्टर कन्हैयालाल बड़े सज्जन और प्रेमी आदमी हैं। यदि वह बदलेमें मेरी दीदीका प्रेम चाहते हैं तो कोई अन्याय नहीं करते और यदि दीदी उनके गुणोंको देखकर उन्हें चाहती है तो उसे इस बातका पूरा अधिकार है। यदि ऐसा है तो मैं क्यों वृथा इस बातसे जलता हूँ ? स्त्री-पुरुषका पारस्परिक प्रेम स्वाभाविक है और अपनी दीदीकी प्रसन्नता देखकर मुझे भी हर्ष होना चाहिए। किसीके दोष और दुर्बलतापर विचार करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। जो व्यक्ति जिस बातपर प्रसन्न रहता है वही उसके लिये अच्छा है। सभी मनुष्योंकी वृत्तियाँ एक-सी होती हैं। डाक्टर कन्हैयालालमें और मुझमें कोई भेद नहीं है।

" इस प्रकार मैंने अपने मनको समझाया। धीरे-धीरे मेरी आत्मामें एक उद्दीप्त गरिमा जाग उठी और मैंने अपनेको तुच्छ हिंसा और विद्वेषके भावसे बहुत ऊँचा उठा हुआ पाया। विजयके उल्लाससे मेरा हृदय जगमगा उठा और एक अपूर्व आध्यात्मिक स्फूर्तिसे मेरे पंख उड़नेके लिये फड़फड़ाने लगे। मैंने सोचा—'रात-दिनकी दुश्चिंताओंसे मुक्ति पाकर यदि इसी प्रकार आनंदकी उमंगमें मैं सदाके लिये अपनी दो आँखोंको शीघ्र मूँद सकता तो कैसा अच्छा न होता ! इस समय मेरे मनमें किसीके प्रति घृणा नहीं है, किसीके प्रति द्रोह नहीं है। मेरी आत्मा समस्त प्राणियोंको, समस्त विश्वको सुमधुर प्रेमसे आलिंगन कर रही है। इसी अवस्थामें यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो मौत भी मुझे सस्नेह गले लगाती !'

* * *

५

" बहुत देर तक इस प्रकारकी भावनाओंमें निमग्न रहनेके बाद जब मुझे चैतन्य हुआ तो मुझे अपनी स्थितिपर तरस आया। मैंने सोचा—

'इतनी छोटी अवस्थामें, जब मैं यौवनके द्वारपर ही अच्छी तरहसे नहीं पहुँचने पाया हूँ, इस प्रकार जीने-मरनेकी चिंताओंमें मग्न रहनेकी क्या ऐसी आवश्यकता मुझे पड़ी थी ! संसारमें इतने आदमियोंको मैं रात-दिन जीवनका आनंद लूटते और हँसते-खेलते हुए देखता हूँ; साठ-साठ सत्तर-सत्तर वर्षके बूढ़ोंको जीवनकी सभी बातोंमें दिलचस्पी लेते हुए देखता हूँ; तब अपनी इतनी अल्पावस्थामें मैं क्यों जीवनसे उकता गया हूँ ? क्यों मैं अपनेको अकेला, स्नेह-वंचित और निरुपाय समझ रहा हूँ ?'

" फिर सोचा—' मैं अकेला ही तो हूँ, इसमें संदेह ही क्या है ! श्मशानसे लौटकर जब मैं घर जाऊँगा तो कोई वहाँ मेरी कुशल पूछनेवाला नहीं है, कोई दिलासा देनेवाला नहीं है । दीदी अपने ही सुख-दुःखकी कल्पनामें व्यस्त रहती है, अम्माँ घरमें नहीं है, और यदि घरमें होती भी तो कभी भूलकर भी मेरी मानसिक वेदनाओंका हाल न पूछती । काकाको राजनीतिक भावनाओंसे बिल्कुल फुर्सत नहीं रहती, इसलिये उन्होंने कभी मुझसे यह न पूछा कि मेरे भावी जीवनका उद्देश्य क्या है और मैं आजकल किन चिंताओंमें लगा हूँ । लीला मुझे थोड़ा-बहुत प्यार करती है, इसमें संदेह नहीं, पर वह अभी बच्ची ही है,—उसकी समवेदनाका कोई महत्त्व नहीं है । ऐसी हालतमें मेरे लिये जैसा श्मशान है घर भी वैसा ही है ।' मेरी आँखोंसे दो-एक बूँद आँसूके टपक पड़े । मैंने बलपूर्वक अपनी दुर्बलताको दमन किया ।

* * * *

" श्मशानसे लौटकर कुछ देरके लिये माधवी दीदीके पास बैठा रहा । पर उनके साथ बैठनेसे मेरा विषाद ही बढ़ा, किसी प्रकारका उत्साह प्राप्त नहीं हुआ ।

" जब घर पहुँचा तो अँधेरा हो गया था। दीदी आज अकेली और उदास बैठी होगी, इस ख्यालसे उसीके पास जाकर कुछ देर तक बैठे रहनेका विचार किया। उसके प्रति आज मेरे मनमें करुणाका भाव जागरित हो गया था। कमरेके पास जाकर मैंने बाहरसे पुकारा—'दीदी !' कमरेके भीतर अंधकार छाया हुआ था और बत्ती नहीं जलाई गई थी। कुछ आगे बढ़कर उस प्रायांधकारमें मैंने जो दृश्य देखा उससे मेरे रोंगटे खड़े हो गए, हाथ-पाँव काँपने लगे और दिल बेतहाशा धड़कने लगा। यदि वही दृश्य मैं किसी अन्य समय देखता तो इतना उत्तेजित न होता। पर सायंकाल और रात्रिके बीचका यह समय अत्यंत विकट था। मैंने देखा कि मेरी दीदी अपनी चारपाईमें डाक्टरकी गोदमें बैठी हुई थी और अब मुझे देखकर उसने घबराहटसे उठनेकी चेष्टा की। मैं विभ्रांत होकर लड़खड़ाते हुए पैरोंसे उसी दम अपने कमरेकी तरफ़ चले चला। मुझे चक्कर आ रहा था और सारा मकान और सारी पृथ्वी मुझे घूमती हुई मालूम होने लगी।

" कमरेमें पहुँचकर मैं बिलकुल मृतावस्थामें लेट गया। एक तो दिन-भरकी थकान और दुश्चिंताएँ और तिसपर यह दृश्य ! हिस्टीरिया-ग्रस्त औरतकी तरह मैं प्रबल वेगसे अपने हाथपाँव छटपटाने लगा।

" बहुत देर तक मैं बेचैन होकर करवटें बदलता रहा। जब धीरे-धीरे कुछ स्थिर हुआ तो निश्चित संकल्पसे मेरा हृदय उल्लसित हो उठा। जिस बातकी इच्छा मुझे बहुत दिनोंसे थी, और, नाना कारणोंसे, जिसके लिये मैं आज तक हिचकिचा रहा था, उसकी पूर्त्तिके संबंधमें आज मेरे हृदयसे सब दुविधाएँ दूर हो गईं और मैंने उसके लिये दृढ़ संकल्प कर लिया।—मैंने आत्महत्या करनेकी ठान ली।

* * * *

" मैंने उपनिषत् और गीताका यथेष्ट अध्ययन किया है और आज एक बार फिर उनपर विचार किया है। मैं जानता हूँ कि आत्महत्या करना महामूर्खता और कायरता है। पर जब मनुष्य विशेष–विशेष स्थितियोंके जालमें जकड़ जाता है तो उसका ज्ञान उसे लेशमात्र सहायता नहीं देता। मुझे अब आत्महत्या करनेसे स्वर्गका देवता भी नहीं रोक सकता, कोई ज्ञान, कोई उपदेश मुझे निवारण नहीं कर सकता, अब जीना मेरे लिये बिलकुल असंभव है। आत्महत्याकी जो उल्लासमय उमंग,रात-दिनकी हाय-हाय और दुर्भावनाओंसे मुक्ति पानेकी जो उत्कट लालसा मेरे मनमें समा गई है उसके सामने गीताका मोक्ष नाचीज़ है। मैं जानता हूँ कि लोग कहेंगे—' मरके भी अगर छुटकारा नहीं मिला तो क्या करोगे? मर जानेसे ही क्या तुम मुक्त हो जाओगे?' हाय, जिसपर नहीं बीती है वह आराम कुर्सीपर बैठकर ज्ञानका ख़ासा उपदेश दे सकता है, तोफ़ा तर्क कर सकता है!

" दीदी! तुम्हें अगर यही मंजूर है तो मैं चला। अब तुम्हारे पथमें कोई कंटक नहीं रहा, अबसे कोई तुम्हारे निर्द्वंद्व सुखमें बाधा नहीं पहुँचावेगा। आज तक तुम्हारे दिलको मैंने जितना दुखाया है, उसके लिये मन-ही-मन क्षमा चाहता हूँ। काकाके आनेकी राह देख रहा हूँ। कल-परसों जब काका लौट आवेंगे तब सब समाप्त हो जायगा।

* * * *

" बहुत संभव है, आज काका वापस चले आवेंगे। आज सुबहको फिर ईशोपनिषत् पढ़ा। आत्महत्या करने जा रहा हूँ, पर उपनिषत् पढ़नेकी लालसा नहीं जाती। कैसी अद्भुत प्रवृत्ति है! मेरा यह विश्वास प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा है कि आत्महत्या करनेपर मेरी

आत्माको अपने विकासके लिये कोई उन्नत और आनंदमय पारिपार्श्विक अवस्था प्राप्त होगी। यह विश्वास चाहे कितना ही भ्रांत हो, पर यह मेरे मनमें जम गया है।

*   *   *

" बाहर नौकरोंने बड़ा शोर मचाया है। उनकी बातोंसे माल्रूम होता है कि काका आ गए हैं। मोटर भी आ पहुँचा है। अच्छा ही हुआ। लीला एक बार मेरे कमरेमें आई थी, पर मैं उससे बोला नहीं। उपनिषत्की जो पुस्तक मैं पढ़ने लगा था उसे पढ़ता ही चला गया। न माल्रूम क्यों, आज मैं लीलाके प्रति भी यथेष्ट उदासीन हो गया हूँ।

" काका और अम्माँसे मिलनेकी इच्छा मैं नहीं रखता। इसलिये पहले ही यहाँसे निकल जाना चाहता हूँ। देखूँ, कहीं किसी मित्रके पास 'रिवाल्वर' मिलता है या नहीं।

*   *   *

" बड़ी मुश्किलसे, बहुत खोजके बाद, एक जगहसे रिवाल्वर प्राप्त हुआ है। प्रायः आधी रात बीतनेपर घर पहुँचा हूँ। इस आशंकासे जल्दी नहीं आया कि घरके लोगोंको मेरी करतूत कहीं पहले ही माल्रूम न हो जाय।

*   *   *

" सब ठीक है। मैं तैयार हूँ। हे सारे विश्वकी एकात्मा! मुझे क्षमा करना।"

*   *   *   *

डायरी पढ़ते-पढ़ते आँसुओंकी अविरल धाराओंसे मेरे गाल न जाने कबसे भीगे हुए थे, मुझे माल्रूम भी नहीं होने पाया—मैं इतनी तन्मय

हो गई थी कि यह बात जानने भी न पाई । जब पढ़ चुकी तो मैंने एक लंबी साँस ली और राजूकी आत्मासे क्षमा-भिक्षा और करुणाकी प्रार्थना करने लगी ।

३२

एक दिन था जब मैंने माधवी दीदीके यहाँ फ़र्शपर बैठनेमें अपना अपमान समझा था । पृथ्वी-माताके संसर्गसे मैं इतना परहेज रखती थी ! आज मेरा भाई राख बनकर श्मशानके धूलि-कणोंसे एकप्राण होकर पड़ा था ! मैंने मनमें अपने-आपको संबोधित करके कहा—“ हतभागिनी, जब तक तू अपने दर्प, अपने मान, अपने बड़प्पन और अपनी आत्माको मिट्टीमें मिलानेमें समर्थ न होगी तब तक तेरे पापका प्रायश्चित्त नहीं होगा । भ्रष्टा अहल्या जिस प्रकार गौतमके शापसे वायुभक्ष्या, निराहारा और भस्मशायिनी बनी थी, उसी प्रकार तुझे भी अपने भाईकी पवित्रात्माकी तरह शुद्ध होनेके लिये कठिन नियमोंकी आँचमें अपनी आत्माको भस्म करना होगा—संसारके दु:खित और तप्त जनोंकी सेवा करनी होगी, दरिद्रताको अपनाना होगा, पृथ्वीकी धूलिको नित्य अपने मस्तकपर धारण करना पड़ेगा । दीर्घ-जीवनके अभ्याससे जब शुद्धि हो जायगी तब मृत्युके बाद दूसरे जन्ममें यदि किसी रूपमें राजूको पा सकी, तो उसकी बहन कहलाए जानेके योग्य तू हो सकेगी । ”

उठते, बैठते, सोते, जागते मुझे केवल राजूकी ही भावना व्याकुल करने लगी । क्षण-क्षणमें मेरे मानसमें केवल उसीकी मूर्ति जागरित होकर मुझे उन्मना करके एक अत्यंत तीक्ष्ण वेदनासे मेरा कलेजा छेदती जाती थी । पर यह वेदना मुझे बड़ी प्यारी लगती थी । यदि मैं इस वेदनाका अनुभव न करती तो बहुत संभव है मेरे प्राण कभी न टिकते । प्रायश्चित्तके लिये मेरे प्राणोंका टिकना परमावश्यक था ।

अपने एकसे-एक बढ़कर फ़ैशनेबिल कपड़े फेंककर मैंने विशुद्ध खद्दर धारण कर लिया। यही नहीं, नित्य दो घंटे बैठकर चरखा चलानेका नियम भी मैंने रख लिया। इसलिये नहीं कि इससे देशका उपकार होगा या समाजकी सेवा होगी। अपनी पतितात्माकी शुद्धिके लिये ही मैंने यह व्रत ग्रहण किया था। कॉलेज जाना छोड़ दिया। दीन, दरिद्र, भूखे और कंगले व्यक्तियोंको सप्ताहमें एक दिन भरपेट भोजन और कुछ दक्षिणा देनेका नियम भी रक्खा।

कुछ दिन तक इस प्रकारसे दिन बीते और मेरी आत्माको शान्ति प्राप्त होने लगी। डाक्टर साहब काकाकी मृत्युके बाद केवल शोक प्रकाश करनेके लिये एक दिन अम्माँके पास आए। तबसे उन्होंने बिल्कुल ही आना छोड़ दिया। उनके न आनेसे मुझे और भी अधिक दृढ़ता प्राप्त हुई और व्रत निर्विघ्न चलने लगा। अपने नए जीवनके वैराग्यकी सफलतासे एक अपूर्व शांतिका संयत और स्निग्ध आनंद धीरे-धीरे मेरे हृदयमें जागरित होने लगा। प्राचीन कालकी तापसी महिलाओंके उन्नत चरित्रकी महत्तासे मैं धीरे-धीरे परिचित होने लगी।

कुछ दिन तक यह स्थिति रही। एक दिन मैं अन्यमनस्क होकर अपने भवनके फाटकके पास खड़ी थी और उदासीनताके साथ सड़कसे होकर आने-जानेवाले आदमियों, मोटरों और गाड़ियोंको देख रही थी। अचानक मैंने देखा कि डाक्टर कन्हैयालाल एक मोटरमें मेरे कॉलेजकी संगिनी कमलिनीको साथ लिये चले जा रहे हैं। मैं पत्थरकी मूर्तिकी तरह स्तब्ध रहकर दोनोंकी ओर ताकती रह गई। कमलिनी मुझे देखकर मेरे जले हुए कलेजेमें नमक छिड़कनेके लिये मंद-मंद मुस्कुरा रही थी। डाक्टर साहबने लज्जा या अन्य किसी कारणसे मुँह फेर लिया था। जब

तक मोटर मेरी आँखोंसे ओझल न हो गई, मैं उसीकी ओर आँखें लगाए रही।

जब मोटर अंतर्धान हो गई तो मेरा यम-नियम सब भंग हो चुका था। प्रतिहिंसाकी प्रलयाग्नि फिर एक बार मेरे हृदयमें धधकने लगी। सिरमें झनझनाहट पैदा हो गई थी और चक्कर आने लगा था। मैंने फाटकके एक किवाड़का डंडा पकड़ लिया। राजूकी मृत्युकी कंटकमयी वेदना और काकाकी मृत्युके शोकके अतीत एक अनोखी भावना मेरे मनमें उत्पन्न हुई। सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, पाप-पुण्य, और स्वर्ग-नरक, सब मेरे लिये एकाकार हो गए और शून्यका भैरव हुंकार मेरे दोनों कानोंमें गूँजने लगा। कोई उपाय, कोई गति, कोई मार्ग न सूझनेपर उत्कट निराशाके वश होकर मैंने सोचा—" यदि मैं भले घरकी महिला न होकर ताड़का राक्षसी होती तो उन दोनोंकी छाती फाड़कर उन्हें मोटरसहित निगल जाती ! "

* * *

मेरा व्रत भ्रष्ट हो गया था। अब मेरा जीना भी व्यर्थ था और मरना भी। मैं केवल आकुल होकर भगवानसे प्रश्न करने लगी—" दयामय, मुझे बता दो कि मैंने किसी पूर्व जन्ममें स्वाभाविक नियमोंका पालन करके नारीका जीवन पूर्ण रूपसे बिताया या नहीं ? अथवा वर्त्तमान जीवनकी तरह मेरे सभी पूर्व जीवन भी अर्थहीन, और लक्ष्यभ्रष्ट होकर व्यर्थताके गहन गह्वरमें विलीन हो गए ? "